

मिलति बात यह कठिनते, होय जो साधु सँयोग ॥६॥

तामें लिख्यो कवित्त यह, प्रियादास मतिवान ॥

सो मैं इत लिखिदेतहौं, श्रोता सुनहु सुजान ॥ ७ ॥

कवित्त—मानसिंह राजा ताको छोटो भाई माधवसिंह, ताकी जानौं तिया जाकी बात लै बखानिये ॥ ढिग जो खवासिनि सो इवासनि भरत नाम, रटित जटित प्रेम रानी उर आनिये ॥ नवलकिशोर कबौं नंदको किशोर कभूँ वृंदावन चंद कहि आंखें भरि पानिये ॥ सुनत विकल भई सुनिवेकी चाह भई, रीति यह नई कछु प्रीति पहिंचानिये ॥ १ ॥

दोहा—तब रानी अति हठ परी, मोको भक्ति बताव ॥

तब चेरी चित चाहिकै, वरण्यो संत प्रभाव ॥ ८ ॥

कवित्त—जबते बताय दीन्ही चेरी कृष्ण रस रीति, तबते हियेकी गई फूटि विषय गागरी ॥ नटनागर गुननको आगरमें प्रीति बाढ़ी, गाढ़ी भै प्रतीति जगी रीति भई कागरी ॥ वसन डसन भये हँसन रसन होत, इवासनते जागी है वियोग आगि आगरी ॥ धाम तो उजार सोहै छार सोहै काम काज, आलिनके यूथ जाल ऐसे हाल नागरी ॥ २ ॥

दोहा—रत्नावती सुभाव को, पासमान हरषाय ॥

यदुपति भक्ति रहस्य सब, दीन्ह्यो आसु बताय ॥९॥

तब चेरीको मानि गुरु, सिंहासन बैठाय ॥

रत्नावति पूजन लगी, प्रीति प्रतीति बढ़ाय ॥ १० ॥

सादर साथ जेवांवती, धरै कृष्णको ध्यान ॥

कबहुँ कबहुँ सो ध्यानमें, लखै रूप भगवान ॥ ११ ॥

तब जो चेरी गुरु कियो, ताको निकट बोलाय ॥

कह्यो कौन विधि मैं लखौं, परगट यादवराय ॥ १२ ॥

कवित्त—सुनि रत्नावतीके वैन अति चैनहीं सों बोली रघु-
राज वैन चेरी खरेखरेहैं ॥ शिव सनकादि ब्रह्मादिक न पावैं पार
योगिहूं अनेकन यतन करि जरेहैं ॥ दर्शन दूरि राज छोड़ैं
लोटैं धूरिपै नपावैं छवि पूरि एक प्रेम वश करेहैं ॥ करौ हरि
साधु सेवा भाव भरि मेवा धरि नाना रस खानि बहु भांति
स्वाद भरेहैं ॥ ३ ॥

दोहा—ऐसो सुनि चेरी वचन, रत्नावती अपार ॥

प्रेम भरी निज हाथ हरि, करन लगी शृंगार ॥ १३ ॥

कछु दिन परदा राखिकै, साधुन देय खवाय ॥

पुनि निज कर संतन चरण, धोवै लाज विहाय ॥ १४ ॥

कवित्त—प्रेमहीमें नेम हेम थारलै उमँगि चली, चली दृगधार
सो परोसके जेवांयेहैं ॥ भींजिगई साधु नेह सागर अगाध देखि
नैनन निमेष तजी भये मन भायेहैं ॥ चंदन लगाय आन बीरी
हूं खवाय श्याम चरचा चलाय चख रूप सरसायेहैं ॥ धूमपरी
गाउँ झूमि आजै सब देखिवेको, देखि नृप पास लखि मानस
पठायेहैं ॥ ४ ॥

दोहा—रत्नावती चरित्र सब, सचिवन मंत्र लखाय ॥

मानसिंह महाराजको, जाहिर कीन्ह्यो जाय ॥ १५ ॥

कवित्त—हैकरि निशंक रानी वंक गति लई नई दई तजि
लाज बैठी मुडियन भीरमें ॥ लिख्यो लै देमान नर आये सो वखान
कियो बांचि सुनि आंच लागी नृपके शरीरमें ॥ प्रेमसिंह सुत
ताही कालसों रसाल आयो, भालपै तिलक माल कंठी कंठ
तीरमें । भूपको सलाम कियो नरन जताय दियो, बोल्यो आउ-
मोडीकेर परचो मन पीरमें ॥ ५ ॥

दोहा—रत्नावतिको सुवन जो, प्रेमसिंह अस नाम ॥

तेहिं राजा मुडिया सुवन, भाष्यो करत सलाम ॥१६॥
 जब राजा उठिगे तबै, प्रेमसिंह सब पाहिं ॥
 पूछ्यो भूपतिका कह्यो, मोको वचन अजाहिं ॥१७॥
 प्रेमसिंह सों सब कह्यो, जननी जौन तुम्हारि ॥
 लाज तजी सब संत पै, नृप कह सोइ विचारि ॥१८॥
 प्रेमसिंह सुनि मातुपै, दीन्ह्यो पत्र पठाय ॥
 भूप संतसुत म्वहिं कह्यो, सत्य करहु सो माया ॥१९॥
 पत्र सुनत रत्नावती, मुंडन कीन्ह्यो केश ॥
 सुनंत माखि मारन चह्यो, रत्नावतिहिं नरेश ॥२०॥
 रत्नावती समीप में, दीन्ह्यो बाघ पठाय ॥
 हरिपूजा करती हती, चेरी दियो बताय ॥ २१ ॥
 हरिहि उतारी आरती, रत्नावती तुरंत ॥
 बाघहुको सोइ आरती, कीन्ह्यो ध्यावत संत ॥ २२ ॥

कवित्त—प्रियादासको ॥ करै हरिसेवा भरि रंग अनुराग दृग,
 सुनी यह वाल नेकु नैन उत ठारे हैं । भावहीसों जाने उठि अ-
 ति सनमाने अहो, आज मेरे भाग श्रीनृसिंहजी पधारें हैं ॥ भाव-
 ना सचाई वोही शोभा लै देखाई फूलमाल पहिराई रचि टीको
 लागे प्यारे हैं । भौनते निकसि धाये मानौ खम्भ फारि आये,
 विमुख समूह तत्काल मारडारे हैं ॥ ६ ॥

दोहा—सो नाहरमें कृष्णजी, भयो तुरत आवेश ॥

हरि विमुखिनिको निकसि द्रुत, भख्यो रख्यो नहिं लेश
 रत्नावती प्रभाव अस, देखि मान नरनाह ॥
 रत्नावती समीपके, क्षमा करावन काह ॥ २४ ॥
 माधवसिंहहु मानसिंह, परे चरणमहँ जाय ॥
 कह्यो क्षमहु अपराध मम, यह विभूति तव आहि २५ ॥

बादशाहको रुक्मा आयो । दिल्ली माधव मान सिधायो ॥
 लागे तरन नदी जब राजा । लागोडूवन तहाँ जहाजा ॥
 माधवसिंह कही तब बानी । हरिजन सुमिरि होय दुखहानी ॥
 मानसिंह रत्नावति ध्यायो । तब प्रभु नौका पार लगायो ॥
 आये फिरि जैपुर महिपाला । पुनि जबगे दिल्ली कछु काला ॥
 बादशाह कह किमि फिरि गयऊ । तब नृप सब हवाल कहि दयऊ ॥
 रत्नावती चरित सुनि शाहा । तासु दरश कीन्ह्यो उत्साहा ॥
 मानसिंहसों कह्यो बुझाई । देहु तासु तस्वीर मँगाई ॥
 सुमिरत सरित कियो तोहिंपारा । मोहिं पार करिहैं संसारा ॥
 रत्नावतिकी मांगि सबीहा । शाह दरश करि किय शुभ ईहा ॥
 मानसिंह माधवसिंह काहीं । कह्यो बोलाय इकांतहि माहीं ॥
 सम्पति देहु जो संत खवावै । कौनेहुँ विधिसों नहिं दुख पावै ॥

दोहा—रत्नावती चरित्र यह, वण्यो मति अनुसार ।

प्रियादासके कवित कछु, लिख्यो भीति विस्तार २६ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे

त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

अथ त्रिपुरदासकी कथा ॥

दोहा—त्रिपुरदास इतिहासको, अब मैं करौं प्रकाश ॥

श्रोता सुनहु हुलास भरि, सो कायथ हरिदास ॥ १ ॥

त्रिपुरदास इक भूपति नेरे । रहहिं जाहि ढिग सांझ सबेरे ॥
 तहँ इक पंडित कोउ चलि आयो । नृप पंडितसों बाद बढ़ायो ॥
 शिथिल परचो नृप पंडित जबहीं । त्रिपुर सहाय कियो अति तबहीं ॥
 डग्यो न नृप पंडित कर पक्षा । कोप्यो तब सो विबुध ततक्षा ॥
 त्रिपुर कह्यो हम करैं जो वादा । तो तुम्हरी नशाय मर्यादा ॥

पंडित कह्यो अधम तैं वरना । मोसों शास्त्र विवाद न करना ॥
 त्रिपुर कह्यो मैं अधम कौन विधि। मोरि अधमता करहु आप सिधि
 पंडित कह्यो समर्थन नाहीं । त्रिपुर समर्थन कियो तहाँहीं ॥
 पुनि पंडितके पद गहि दोऊ । कियो प्रणाम कह्यो तब सोऊ ॥
 धन्य धन्य तुम अहौ भुवाला । जासु सभा असि बुद्धि विशाला
 दशहजार मुद्रादै राजा । पंडितको करि विदा समाजा ॥
 त्रिपुरहि तब अति भई गलानी । मनमें कियो विचार विज्ञानी ॥

दोहा—विद्या पाय विवाद किय, कीन्ह्यो मद धन पाय ॥

हैं समर्थ परदुख दयो, नरकमूल त्रै आय ॥ २ ॥

विद्या पाय जो ज्ञान लिय, धन लहि कीन्ह्यो दान ॥

समर्थ हैं उपकार किय, त्रैपद स्वर्ग निदान ॥ ३ ॥

त्रिपुरदास मन माहैं विचारी । वृंदावनको गयो सिधारी ॥
 श्रीवल्लभाचार्य शिषि भयऊ । वाद विवाद त्यागि सब दयऊ ॥
 कछु दिन वस गुरुशासन पाई । वसि घर कियो साधुसेवकाई ॥
 शीत निवारण वसन सोहावन । नेम कियो श्रीनाथ पठावन ॥
 यहि विधि वीतिगयो कछुकालै । कोउ चुगली कीन्ह्यो महिपालै ॥
 त्रिपुरदास तुव वित्त चोरई । करत पखंड साधु सेवकाई ॥
 भूपति त्रिपुरदास कहैं लूट्यो । त्रिपुरदास मान्यो दुखछूट्यो ॥
 जौन मिलै तेहि करै निवाहू । आठहु याम भजै सियनाहू ॥
 शीतकाल आयो पुनि जबहीं । त्रिपुरदास पछिताने तबहीं ॥
 रह्यो विभव जो मोर विशाला । श्रीनाथहि समीप प्रतिशाला ॥
 भेजत रह्यो वसन तब भारी । कहा करौं अब भयो भिखारी ॥
 अस विचार किय हाट पयाना । लायो मोल अमौवा थाना ॥

दोहा—तौन अमोवा थान इक, कोउ वैष्णवके हाथ ॥

पठयो कहि वृत्तांत निज, जहाँ रहे श्रीनाथ ॥ ४ ॥

जानि पुजारी अधम पट, कोनेराख्योडारि ॥
 ताहि निशा श्रीनाथ तनु, कांप्यो लगत बयारि॥५॥
 प्रभुको लाग्यो जाड अति, पूजक सिंगरे जानि ॥
 वसन अमोल अमोल सब,लगे ओढावन आनि ॥६॥
 प्रभुको मिथ्यो न जाड कछु,तब कोउ कह्यो सुजान॥
 भेज्यो त्रिपुर ओढाइये,सोइ अमौवा थान ॥ ७ ॥
 जबै अमौवा नाथको, पूजक दियो ओढाय ॥
 मिथ्यो कम्प तनु शीतकृत, पूजक रहे चकाय ॥ ८ ॥
 त्रिपुरदास की जय कहे,दीन्हे खबरि पठाय ॥
 त्रिपुरदास सुनि अति पुलकि, वृंदावनको जाय॥९॥
 लोटि लोटि ब्रजभूमि रज,करि साधुन सेवकाय ॥
 तजि शरीर मतिधीर सो, जहँ यदुवीर सोहाय ॥१०॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे
 चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

अथ सदनकसाईकी कथा ॥

दोहा—सदन कसाईकी कहौं, सुखदायी यह गाथ ॥
 द्विजताई तजि रीझिगे, यदुराई जेहि साथ ॥ १ ॥
 रह्यो एक कहूँ सदन कसाई । आमिष बेचि रोज सो खाई ॥
 रहै साधु हरिनाम उचारै । निज करसों नहिं जीवन मारै॥
 शालिग्राम शिला इक लाई । ताहीभर आमिष तौलाई ॥
 बेचै सो चलि रोज बजारा । करत रह्यो यहिभाति गुजारा॥
 शालिग्राम शिला नहिं जानै । तौन शिला पषाणकरि मानै ॥
 घटै बढै सो शिला सदाही । उपराजै धन दिन प्रति ताही॥
 एक दिवश इक साधु सिधायो । शालिग्राम देखि अनखायो ॥

सुनहि दुष्ट रे सदन कसाई । शालिग्राम शिला कहँ पाई ॥
 तोलै आमिष सम प्रभु मोरा । सहि न जात अपचार कठोरा ॥
 सदन कह्यो अबलौ नहि जान्यो । ताते यह अपचारहि ठान्यो ॥
 कौन यतनते यह अघ जाई । देउ कृपाकर मोहि बताई ॥
 साधु कह्यो मोको प्रभु दीजै । यामें और यतन नहि कीजै ॥

दोहा—सदन साधु कहँ दिय शिला, सो निज घरमें ल्याय ।

पूज्यो वेदविधान ते, पंचामृत अन्हवाय ॥ १ ॥

दियो साधुको स्वप्न प्रभु, तैं अनुचित यह कीन ॥

सदनकसाई सदन ते, मोहि बाहिर करिदीन ॥ २ ॥

सुनत वचन प्रभुके कह्यो, साधु सकोपित वानि ॥

प्रियादासको कवितसो, मैं इत कहौ बखानि ॥

कवित्त—वह पद भाषा द्वैक जैसे तैसे गावतहैं, हम तुम्हें गावत
 हैं सदा वेदवानी सों ॥ मांस भरे हाथ वह आय तुम्हें छीवत
 है, कैयो मास बीते हमें तुम्हरी कहानी सों ॥ लक्ष्मी नारायण
 जू बड़े रिझवार तुम, रीझ निकसत है तुम्हारी रजधानी सों ॥
 हम निर्मल गंगाजलसे अन्हवावैं तुम्हें, तुम रीझे सदनके
 बधनाके पानी सों ॥ १ ॥

दोहा—साधु वचन सुनिकै हरी, कह्यो वचन मुसकाय ॥

सो कवित्त प्रियदासको, मैं इत दियो लिखाय ॥

कवित्त—कहा भयो तोपै बडो कुलहू में जन्म भयो, जप तप
 नेम व्रत साधन अपारहै ॥ कहा भयो तीरथ अनेकन गवन कि
 ये, गयो नहीं जौलौं निज मनको विकारहै ॥ जौलौं मेरे संतनमें
 राखे जातिभेद सदा, तौलौं कहौ कैसे वह पावै सुख सारहै ॥
 मेरो साधु नीच पद पंकज न धोयो जौलौं, तौलौं सब शास्त्रनको
 पढ़िबोई भासहै ॥ १ ॥

सोरठा—सुनि प्रभु ऐसी वाणि,साधु सदनके सदन चलि ॥
 सब वृत्तांत बखानि,शालिग्राम शिला दयो ॥ २ ॥
 सदन सुनत अति आनंदमानी। आमिष बेचव त्यागि विज्ञानी॥
 जगन्नाथ नगरीमें धायो। चलयो साधुयक संग सोहायो॥
 दोउ मिलि चले पंथ महँ संगी। क्षण क्षण रंगे रामके रंगा ॥
 मिल्यो पंथ महँ पुर यक भारी। कह्यो सदनसों साधु उचारी ॥
 मैं भिक्षा मांगनहित जाऊं। तुम रहियो इत जबलगी आऊं॥
 अस कहि साधु तुरंत सिधारा। सदन रहे इक सदन दुवारा ॥
 तौन भवनकी भामिनि कोई। सदनहि जोहि मोहिगै सोई ॥
 कह्यो सदनसों इत तुम रहहू। मम सत्कार सकल अवगहहू ॥
 सदन साधुसेवी तेहि जानी। रहे भवन ताके सुखमानी ॥
 तिय बहु विधि पकवान बनाई। सादर सदनै दियो खवाई ॥
 भीतर अयन शयन करवायो। निशि अपनो शृंगार बनायो ॥
 अर्द्ध निशागै सदन समीपा। बोली वचन बुझावत दीपा ॥
 मोहि गयो तोपर मन मोरा। करहु जौन भावै चित तोरा ॥
 दोहा—सदन कह्यो परदारको,परश करौं मैं नाहिं ।

मेरो चित मेरेवसै, काटै जो गरकाहिं ॥ ६ ॥
 तिय जान्यो पति मारनकहतौ। पतिकी भीति संग नाहिं चहतौ॥
 तब तुरंत गइ कंत मकाना। काढ्यो पिय शिर काढिकृपाना॥
 सदन समीप आय पुनि गाई। तुमहितमें पतिको हति आई ॥
 सदन कह्यो तब तापर कोपी। दूरहोय पापिनि पति लोपी ॥
 तिय निराश है जाय दुवारा। करि विलाप अति दियो गोहारा॥
 आये सकल परोसी धाई। तिनसों कह्यो नारि विलखाई ॥
 साधु जानि मैं भवन टिकायो। बहुविध व्यञ्जन विरचि खवायो॥
 अर्द्धनिशा सो पापी संता। मारचो खड्ग काढि मम कंता॥

पुरजन शीश कटे तेहि देखे । सब अपराध साधुके लेखे ॥
 भूपति सदन सदन कहँ बाँधी । लैराख्यो कोठरी महँ धाँधी ॥
 भोर भये पूछ्यो नृप बाता । तैंकत किय तियके पतिघाता ॥
 सुनत सदन मनमाहँ विचारा । जो मैं कहौं नारि अपकारा ॥

दोहा—तौ तियको वध होय हठि, ताते शिर धरि लेहुँ ॥

जस हरि इच्छ होयगी, सो टरिहै नहिं केहुँ ॥ ७ ॥

अस विचारि तब सदन बखान्यो । मैहीं निशि तियको पिय भान्यो
 अति अपराध जानि नरनाथा । लियो कटाय सदनको हाथा ॥
 नेकहुँ सोच सदन नहिं लायो । जगन्नाथको तुरत सिधायो ॥
 सदन पुरी पहुँच्यो जब जाई । स्वप्न दियो पंडन यदुराई ॥
 मोर भक्त वर सदन कसाई । ल्यावहु तेहिं पालकी चढ़ाई ॥
 पंडा सकल प्रभातहिं धाये । सदन निकट शिविका लैआये ॥
 सदन चढ़्यो शिविका में नहिं । आय गयो इक साधु तहांहिं ॥
 सदनै लैयकांत महँ भाख्यो । तुम कस मोर हुकुम नहिं राख्यो ॥
 मैं हौं जगन्नाथ प्रभु तोरा । सदन कह्यो तब वचन कठोरा ॥
 मैं परदार ग्रहण किय नहिं । काटि गये मम हाथ वृथाहिं ॥
 जो तिय कीन्ह्यो निज पिय घाता । भयो न ताहि दंड कस बाता ॥
 साधु स्वरूप नाथ मुसकाई । पूरवकी सब कथा सुनाई ॥

दोहा—पूर्व जन्मके विप्र तुम, काशीमें रह धाम ।

पढ़न पढ़ावन किय सकल, धर्मधुरंधर आम ॥ ८ ॥

एक धेनु इक दिवश कसाई । गह्यो हतन सो चली पराई ॥
 जब पावत ताको नहिं हेर्यो । तबै कसाई तुमको टेर्यो ॥
 तुम अपने दोउ कर पसराई । रोंक्यो धेनु गह्यो सो आई ॥
 ल घर सुरभी हत्यो कसाई । गोहत्या तोहिं लगी महाई ॥
 धेनु सोइ तिय कंत कसाई । कटे हाथ सोइ अघ फल भाई ॥

जानहु मोरि रीति असि प्यारे । जे अनन्य हैं भक्त हमारे ॥
तिनको पूर्व भोग नहिं राखौ । सदा भक्त शत्रुन पै माखौ ॥
अब प्रसाद कर धरत हमारे । हैं हैं हाथ तुरंत तिहारे ॥
चढ़ो पालकी मंदिर जाहू । सादर महाप्रसादहि खाहू ॥
अस कहि हरिभे अंतर्द्वाना । सदन सत्य शासन प्रभु माना ॥
चढ़े पालकी मंदिर आये । पंडा प्रभु प्रसाद लै धाये ॥
लेन प्रसादहि भुज पसराये । तुरतै उभय हाथ हैं आये ॥

दोहा—सदन चरित्र निहारिकै, पुरी लोग हरषान ।

सदन कसार्देको नमें, गुणि भागवत प्रधान ॥९॥

सदन कछुक दिन करि सदन, नंदनंदन कहैं ध्याय ।

कदन करत यमफँदनको, गे हरिसदन सिधाय ॥१०॥

इति श्रीभक्तमालारामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

पंचाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

अथ नरसीमेहताकी कथा ॥

दोहा—हिय हरसी वरसी हरष, हरसी विशद विचित्र ॥

सुरसरसी सरसी कहौं, नरसी कथा पवित्र ॥ १ ॥

जूनागढ़ गुजरातमें, तहँको निवसनहार ॥

नरसी उत्तम जाति द्विज, रह्यो दरिद्र अगार ॥ २ ॥

अतिशय सूढ़ देश गुजराता। कोउ नहिं कृष्ण भजनको ज्ञाता ॥

घरमें रहै भ्रात भौजाई । करै न उद्यम कोउ कहूँ जाई ॥

नरसीको नहिं भयो विवाहू । भ्रात मिले महँ कर निर्वाहू ॥

नरसी इक दिन कहूँ ते आई । मांग्यो सलिल देहिं भौजाई ॥

कह्यो भ्रात तिय वचन रिसाई । देहूँ सलिलकादेहि कमाई ॥

लै भाजन भरि पीवहु नीरा । तुमहिं देखि हिय उपजति पीरा ॥

लगे बाण सम वचन कठोरा । नरसी निकसि चल्यो दुखबोरा ॥
बाहिर नगर शिवालय रहेऊ । लंघन सात बैठि तहँ किहेऊ ॥
द्रव्यो उमा चित करुण अपारा । विहँसि शम्भुसों वचन उचारा ॥
तुव गृह द्विज किय सात उपासा । जो मांगै दीजै कृतिवासा ॥
तबै प्रगाटि कह वयन त्रिनैना । मांगु मांगु वर तोहिं कछु भयना ॥
नरसी कह्यो न मांगन जाना । जो प्रिय होय सो देहु इशाना ॥

दोहा—शम्भु विचारयो मनहिं तब, मोहिं प्रिय यदुकुल चंद ॥

तासु रास दरशाइ हौं, वृंदावन सखिवृंद ॥३॥

दिव्यरूप करि लै निज साथा । गे जहँ रास करत यदुनाथा ॥
सखी रूप करिकै जिय काहीं । प्रविशे रास विलास जहांहीं ॥
तेहि कर दियो धराय मशाला । गहत बन्यो नहिं नौसिख हाला ॥
कह्यो शम्भुसों हरि मुसकाई । लयाये तुम इत कौन लेवाई ॥
जाय भवन मम रासहि ध्यावै । अंत समय मम रासहि आवै ॥
हरिशासन सुनि शम्भु तुराई । दियो तहँ नरसी पहुँचाई ॥
नरसीको स्वप्नो सो भयऊ । उक्थो चौंकि चकृत ह्वै गयऊ ॥
शम्भुकृपा पुनि मनहिं विचारी । जूनागढ़ गवन्यो अविकारी ॥
बाहिर नगर निवास बनायो । गाय रास पद यदुपातिध्यायो ॥
भई कछुक सम्पति तब धामैं । करै रासलीला पद गामैं ॥
नाचै हरि पहुँ भाव बतावैं । दशा देखि कुलके जरि जावैं ॥
करै सदा संतन सेवकाई । कछुक काल यहि भौंतिविताई ॥

दोहा—संतमंडली द्वारका, जातरही हरषाय ॥

पूछ्यो साहूकारको, जूनागढ़में आय ॥४॥

साहूकार नगर जो होई । हुंडी देय सातसै सोई ॥
नरसीके द्रोहीजन जेते । नरसीको बतायदिय तेते ॥
साधु सबै नरसीघर आये । हुंडी हित रुपया पहुँचाये ॥

नरसी गुण्यो वित्त घर नहीं । संत विमुख दीन्हे विन जाहीं॥
 यह संकेत निवारणहारो । ब्रजको माखन चाखनवारो ॥
 कृष्ण ध्याय मुद्रा लैलीन्ह्यो । हुंडी साधुनको लखिदीन्ह्यो ॥
 पूछ्यो संत साहुको नामा । तब बोल्यो नरसी मति धामा॥
 वसै द्वारका सहित उछाहू । जानहु संत सँवलिया साहू ॥
 देखत हुंडी तुरत पठाई । यामें संशय नाहिं जनाई ॥
 लै हुंडी द्रुत साधु सिधाये । कुशस्थली षट दिनमहँ आये॥
 हेरनलगे सँवलियो साहू । नाम लेत पूछै सब काहू ॥
 कहूँ नाहिं मिल्यो द्वारकामाहीं । नाम सवलिया साह तहाँहीं ॥
 दोहा—नरसी पै जब संत सब, कहे सकोपित बैन ।

ठग ठगिलीन्ह्यो मुद्रिका, चलो मारि तेहि लैन ॥५॥
 निकसि नगर बाहर जब आये । मिले सँवलिया साहु सोहाये ॥
 पूछ्यो संत सब तेहिकाहीं । कह्यो सो साहु सँवलिया आहीं॥
 साधु कह्यो खोजत हम थाके । अबलों रहे धाम तुम काके ॥
 कह्यो सँवलिया साहु सुवानी । चलहु भवन हमरे सुखखानी ॥
 संतन लाय सँवलिया साधू । भवन देखायो सुछविअगाधू ॥
 मंदिर सुंदर अतिहिं उतंगा । मनहु रच्यो निजपाणिअनंगा ॥
 सम्पति सकल पूर सब ठामा । बैठे जन मनु मूरति कामा ॥
 गद्दी छवि हद्दी अति ऊंची । रद्दी कर शशि प्रभा समूची ॥
 तामें बैठि सँवलिया साहू । दिय आसन संतन सबकाहू ॥
 पूंछि कुशल मुद्रा मँगवाई । दियो सातसै तुरत गनाई ॥
 कह्यो सँवलिया साहु बहोरी । नरसी सों भाष्यो असि मोरी ॥
 लघु हुंडी पठवावाहिं नाहीं । उनको यह अनुचित दरशाहीं॥

दोहा—सहस्रलक्ष अरु कोटिकी, हुंडी देहिं पठाय ॥

उनकी पाती पावते, तुरतै देब पठाय ॥ ६ ॥

कबहुँ शंक करिहैं कछु नहीँ । हुंडी पठवाइहैं सदाहीँ ॥
 गमने विस्मित साधु तुराई । जूनागढ़ आये सुखछाई ॥
 मिले संत नरसी कहँ जाई । दियो सकल वृत्तांत सुनाई ॥
 सुनत सँवलिया साहु चरित्रा । नरसी अति मुदमानि विचित्रा ॥
 संतन मिल्यो बहोरि बहोरी । भाषत भयो भाग्य धनि तोरी ॥
 लखे सँवलिया साहु सिधारी । हम नहिँ लखे अभाग्य हमारी ॥
 पुनि संतन भोजन करवाई । सादर नरसी दियो विदाई ॥
 यहि विधि नरसीको बहु काला । बीतिगयो ध्यावत नँदलाला ॥
 भयो पुत्र इक युगल कुमारी । नरसीको नहिँ दुख सुखकारी ॥
 देखहु संत सेव प्रभुताई । हुंडी आपहि कृष्ण पठाई ॥
 जो धरते रुपिया घरमाहीं । तोहारि सुरति करत कहँ नहीँ ॥
 तामें सुनहु एक इतिहासा । श्रोता सिंगरे सहित हुलासा ॥

दोहा—रह्यो एक द्विज नगर कहँ, सो असि मानी वानि ॥

देहु जो मोहिं जगदीश सुत, तो तुम कहँ सुखमानि ॥६॥
 अटका दिशत रुपैया केरो । तुमहि चढ़ैहों अस प्रणमेरो ॥
 कछुदिन में द्विजके सुत भयझायक कर द्विज मुद्रासो दयऊ ॥
 कह्यो जाय जगदीश चढ़ावहु । एकहु मुद्रा नहिँ घटावहु ॥
 विपिन पंथ ह्वै विप्र सिधारच्यो । मारग महँ तेहिं संत पुकारच्यो ॥
 सहस मूर्ति वैष्णव व्रत कीने । परे इतै अतिशय दुख भीने ॥
 सज्जन होहु तु भोजहि देहु । सुनत विप्र मान्यो संदेहु ॥
 हरि स्वरूप सब संत गनाई । सोइ मुद्राको अन्न मँगाई ॥
 दिय संतन भोजन करवाई । द्वै मुद्रा बचिरहे तहाँई ॥
 द्वै मुद्रालै पुरी सिधारा । अरण्यो प्रभुहि मानि सुखसारा ॥
 जेहि दिन भवनलौटि द्विज आयो । हरितेहि दिन द्विज स्वप्न देखायो ॥
 तुव प्रेषित द्वैशत जे मुद्रा । द्वै कम अरण्यो मोहिं द्विज छुद्रा ॥

ऐसो स्वप्न देखि द्विजराई । उठि प्रभात द्विज तुरत बोलाई ॥

दोहा—बोल्यो आँखि देखायकै, द्वै कस लियो चोराय ।

एक सवै अट्टानवे, मुद्रा दियो चढ़ाय ॥ ८ ॥

कह्यो पुरोहित तब आसि वानी । मैं हरिरूप संत सब जानी ॥

दीन्ह्यो संतन द्रव्य खवाई । बचे द्वैक ते दियो चढ़ाई ॥

ऐसी सुनत पुरोहित वानी । सो द्विज हरिवपु संतन मानी ॥

करन लग्यो संतन सेवकाई । हरिपुर गो संसार विहाई ॥

देखहु नरसीको विश्वासा । दिय हुंडी भरि रमा निवासा ॥

नरसी बसे सुखित घर माहीं । कियो काज पुनि कन्या काहीं ॥

प्रथम गर्भ दुहिताके भयऊ । तासु सासु कोपित कहि दयऊ ॥

तेरो पिता महाकंगाला । पठ्यो कछु पट नहिं यहि काला ॥

कन्या नरसीपहँ दुख छाई । सासु कथित कहवाय पठाई ॥

जो यहि समय पिता नहिं ऐहौ । अतिशय अयश जगत महँ पैहौ ॥

सुतापत्र नरसी जब पायो । समधी भवन तुरत चलि आयो ॥

पिता मिलन हित सुता सिधाई । मिलि बहु विधि पूछ्यो शिरनाई ॥

दोहा—मोहिं देनके हेतु पितु, का लाये सो भाषु ।

जो नहिं देहौ तौ अवशि, सासु करी अतिमाषु ॥ ९ ॥

नरसी कह्यो कछुक नहिं लाये । भवन माहिं दूँढ़े नहिं पाये ॥

सुता कह्यो छूँछे कत आये । मोहिं दुसह दुख पिता कमाये ॥

नरसी कह्यो कहै का साशू । सुता पूँछि मोहिं करै प्रकाशू ॥

सुता सासु ढिग तुरत सिधारी । देखत सासु प्रकोपि उचारी ॥

का लायो पितु तोहिं सधौरी । सुता कह्यो तेरी मति बौरी ॥

पूँछ्यो पिता जो समधिनि भाषै । मम मन सकल देन अभिलाषै ॥

सासु सहस्रन नाउँ लिखाई । दीन्ह्यो नरसी ढिग पठवाई ॥

नरसी कह्यो भूलि रह जेई । सकल लिखाय पत्रमहँ देई ॥

सासु सुनत अमरष अति छाई। द्वै पषाण पुनि दियो लिखाई ॥
 नरसी पत्र पाय सुखमानी। बैठि कोठरी ध्यानहि ठानी ॥
 नरसीको औ यदुपति केरो। रह्यो प्रथम संकेत निवेरो ॥
 जब तुम गैहौ राग केदारा। होई मिलन हमार तुम्हारा ॥
 दोहा—सो नरसी अनुराग भरि, राग्यो राग केदार ।

भक्त प्रेमवश प्रगटभो, श्रीवसुदेव कुमार ॥ १० ॥

पत्र लिखित सब वसन हजारन। कोठरी ते द्रुत लग्यो निकारन॥
 वसन शैल लागि गयो दुवारा। कनक रजत युग उपल पवारा॥
 भये कृष्ण पुनि अंतर्द्वाना। नरसी पट पठयो तब नाना ॥
 ग्राम मात्रजन सब पट पाये। औरहु पाये जे तहँ आये ॥
 पठयो कनक रजत पाषाणे। समधिनि समधी अचरज माने॥
 छाय रही कीरति संसारा। नरसी गमन कियो आगारा ॥
 नरसीसुता संग चलि दीनी। यदुपति प्रेम भक्ति रस भीनी ॥
 सहित सुता सुत नरसी प्रेमी। निवसे भवन भक्तिके नेमी ॥
 निशि दिन करहि कृष्णपद गाना। छोंड़ि लाज मानहुँ अभिमाना॥
 कुलके सकल वैर अतिमानै। भूपति सों चुगली नित ठानै ॥
 एक दिन नृप नरसी बोलवायो। गान करत सो सभा सिधायो ॥
 सहित सुता सुत हरिरंग राते। गावत नाचत आंशु बहाते ॥

दोहा—जब नरसी आयो सभा, दरश करत महिपाल ॥

शुद्धभयो अंतःहकरण, जानिपरचो नँदलाल ॥ ११ ॥
 तब कोउ विप्र तौन पुरवासी। वरण्यो नरसी चरित हुलासी॥
 जससमधी घर किय सत्कारा। मिल्यो यथा वसुदेव कुमारा॥
 भूपति सुनत परचो पदमाहीं। सत्कारचो बहु नरसीकाहीं ॥
 पुनि कोउ हरिविमुखी तहँ आई। नरसीकी चुगली अस गाई ॥
 काचे सूत विरचि सुममालै। पहिरावतहै नित नँदलालै ॥

सन्मुख बैठि आप जब गावै । माल टूटि नरसी गल आवै ॥
 भूपति लेन परीक्षा हेतू । सभा करायो संत समेतू ॥
 भूपति रेसममें गुहि माला । पहिरायो हालै नँदलाला ॥
 नरसी गान करन पुनि लाग्यो । राग केदारा नहिं तहँ राग्यो ॥
 रह्यो साहुके गहन केदारा । नहिं गायो सो सभा मँझारा ॥
 तब प्रभु धरि नरसी कर रूपा । कह्यो साहुसों वचन अनूपा ॥
 लै रुपया अब देहु केदारा । समुझिलेहु जो होय तुम्हारा ॥

दोहा—साहु तुरत मुद्रा दियो, दियो केदारा राग ॥

साहु पत्र नरसिहि दियो, हरिचलि विलम न लाग १२
 गिरचो गगनते पत्र अंकमें । गायो नरसी तब निशंकमें ॥
 गावत तहां सुराग केदारा । माला टूटत सबै निहारा ॥
 परी माल नरसी गल आई । भूप परचो नरसी पद जाई ॥
 मच्यो सभा महँ जयजय कारा । हरि विमुखी चितभे जरि छारा ॥
 भयो शिष्य नरसीको राजा । भायन भृत्पन सहित समाजा ॥
 सुनहु सबै अब हरि जेहिं भांती । नरसी सुतके भये बराती ॥
 जूनागढ़ संनिधि इक ग्रामा । तामें वसै विप्र मतिधामा ॥
 रहै धनाढ्य सुपात्र सुजाना । तासु कुटुम्बहु तासु समाना ॥
 सुंदारि ताके रही कुमारी । षोडश वर्ष वयस जब धारी ॥
 तब ताको पितु कियो विचारा । करौ विवाहकेर संभारा ॥
 पठयो द्विज अस तेहिकहि दीन्ह्यो । सकुलधनाढ्य खोजि जब लीन्ह्यो ॥
 तब दीन्ह्यो तुम तिलक चढ़ाई । जामें सुता कलेश न पाई ॥

दोहा—चल्यो विप्र लै तिलक तब, जूनागढ़को आय ॥

पूछ्यो सगरे नगरमें, केहि घर धन बहुताय ॥ १३ ॥
 विप्र सकल जे रहे कुलीना । नरसीके संबंधी दीना ॥
 ते सब नरसी वैर विचारी । कही बात तेहिं द्विजहि उचारी ॥

जो कुल सम्पति चहौ बड़ाई । तौ नरसी घर करौ सगाई ॥
 नरसी सरिस आज नहिं कोऊ । सम्पतिमांह बड़ोहै सोऊ ॥
 सो सुनि नरसी घर महिदेवा । जात भयो बोल्यो करि सेवा ॥
 विप्र एक अतिशयधनवाना । जातिहुँ महुँ सो अहै प्रधाना ॥
 सो निज सुता विवाह विचारा । तुम्हरे पुत्र संग सुखसारा ॥
 नरसी ठानिलियो सो व्याहू । लियो तिलक सुमिरत यदुनाहू ॥
 बहुरि विप्र अपने घर गयऊ । कन्या पितहि कहत सो भयऊ ॥
 नरसी नाम पूर्व सुनिराखा । ताते द्विजपर अतिशयमाखा ॥
 नरसी जन्मकेर कंगाला । क्षुधा विवश नित लहत कशाला ॥
 नरसी सुत संग सुता विवाहू । मैं करि किमि लेहौं दुखदाहू ॥

दोहा—कह्यो विप्रसों मापि अति, आयो तिलक चढ़ाय ॥

जेहिकर मैं दीन्ह्यो तिलक, सो कर लेहु कटाय ॥१४॥

तबतौ जाय तिलक लै आऊं । नातो लेउ प्राण यहि ठाऊं ॥
 जुरे पंच सब सुनत विवादा । कहत भये नहिं करहु विषादा ॥
 सुता भाल जस लिख्यो विधाता । सोई होत न दूसरि बाता ॥
 यहि विधि कहि दुहिता पितु काहीं । समुझाये सब आय तहांहीं ॥
 कन्यापिता मानि तब लीन्ह्यो । काज करनको सम्मत कीन्ह्यो ॥
 लग्न लिखाय विचारि शोधाई । दीन्ह्यो नरसी भवन पठाई ॥
 नरसी जबते तिलकहि लीन्ह्यो । तबते व्याह सुरति नहिं कीन्ह्यो ॥
 रंगे कृष्णके प्रेमहि रंगा । गावत पद करते सत्संगा ॥
 जो पूंछै कोउ कबै विवाहू । तौ भाषै जानै यदुनाहू ॥
 लग्न चारि दिन जब रहिगयऊ । पुरमहुँ अति उपहासहि भयऊ ॥
 तब करुणानिधि मनहि विचारा । नरसी मोपर राख्यो भारा ॥
 ताते आज काज सब करिहौं । कलिमहुँ प्रगट होव नहिं डरिहौं ॥

दोहा—अस विचारि करुणायतन, भीष्मकसुता समेत ॥

प्रगट भये नरसी भवन, कियो विवाहहि नेत ॥१५॥
निज करसों रुक्मिणि महरानी। कियो विवाह चार विधि ठानी॥
जाति कुटुम्बहि सकल बुलायो। विविध भांति भोजन करवायो॥
सो द्विज घर पठयो यक चारा। करै विवाहकेर संभारा ॥
सुनत विप्र सो हँस्यो ठठार्ई। ऐहैं किमि बरात सजवाई ॥
इत नरसीसों कह यदुराई। लावहु व्याहि पुत्र उत्त जाई ॥
नरसी कह्यो नमैं कछु जानौं। जस चाहौ तुमहीं तस ठानौं ॥
हरि कह तू गमनै महि माहीं। मैं अकाश ह्वै चलों तहांहीं ॥
नरसी चलयो पुत्रलै साथ। धरि यदुनायक शासन माथा ॥
जबै गयो सो ग्राम नेराई। प्रगटी तबै बरात महाई ॥
मणिन जटित यक दिव्य पालकी। भूषित वाहक मुक्तजालकी॥
प्रगटे तहां तुरंग हज़ारन। सिंधुर सहस मेरु मदमारन ॥
सुवर्ण साजित स्यंदन सोहैं। ललकत जिन्हैं विबुधगण जोहैं॥

दोहा—नखशिख रत्ननते जटित, प्रगटे सुभट अपार ॥

बजेहजारनदुंदभी, माच्यो शोर अपार ॥ १६ ॥

कवित्त—एक ओर गैयर गरदनके ठट ठाटे, एक ओर हैवर
हजारन विराजहीं। स्यंदन अमंद मानो मारके समारे सर्व, प्यादे
अर्व खर्व सुर गर्वको पराजहीं ॥ प्रगटे अकुंठित विकुंठही के
बाजे तहां, कुंठित करैं जे देवराजहूके बाजहीं। भनै रघुराज
यदुराज लै समाज आयो विलसी बरात ऐसी नरसीके काजहीं॥

दोहा—परचो परावन देशमें, कोउ चढ़ि आयो भूप ॥

को पूंछै कहैं जात दल, कोउनहिं यहि अनुरूप॥१७॥

कहैं वराती तब यह बाता। नरसीसुतकी जात बराता ॥
सो द्विजके हितुवा कोउ धाई। अति विलखित यह खबारी जनाई॥

आवत नरसी लिहे बराता । कछु नहिं तासु प्रमाण जनाता ॥
 जितनो धन तुम्हरे घरमाहीं । चारहु भरि पूजी तेहि नाही ॥
 धायो द्विज तब शीश उघारी । सिंधु समान बरात निहारी ॥
 गिरोजाय नरसी पदमाहीं । राखहु अब मर्यादा काहीं ॥
 नरसी तापर करि अति दाया । विनय कियो सुनियो यदुराया ॥
 राखहु विप्रहुकी अब लाजू । तुमतौ नाथ गरीबनिवाजू ॥
 तब यदुनाथ रमा पठवाई । ऋद्धि सिद्धि युत द्विज घर आई ॥
 क्षणमहँ दियो साजु सब साजी । खाय बराती भे सब राजी ॥
 ग्राम देशके जे जन आये । पृथक् पृथक् सम्पति सब पाये ॥
 सो द्विजभवन कुबेर भवन भो । कौतुक किमि जहँ रमा रवन भो ॥

दोहा—कोउ नहिं देख्यो नहिं सुन्यो, भयो यथाविधि व्याह ॥

सो विभूति को कहिसकै, जहँ प्रगटे यदुनाह ॥ १८ ॥

चारि दिवश तहँ रहतभै, नरसीसुवन बरात ॥

खान पान सन्मान बहु, भयो वरणि नहिं जात ॥ १९ ॥

पुनि सोई सामान सौं, कियो बरात पयान ॥

आई नरसीके भवन, तहाँ विभूति अमान ॥ २० ॥

यहि विधि नरसीसुवनको, हरिकिय प्रगट विवाह ॥

फेरि बरात समेतभै, अंतर्हित यदुनाह ॥ २१ ॥

फैलि रह्यो सब देश महँ, नरसी सुयश विशाल ॥

नंदलालसों दूसरो, कोहै दीनदयाल ॥ २२ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

अथ मीराबाईकी कथा ॥

दोहा—अब मीरा मंजुल चरित, श्रोता सुनहु सुजान ॥

नाभाकीछप्पय प्रथम, तामें करहुँ बखान ॥ १ ॥

छप्पय—सदृश गोपिकन प्रेम प्रगट कलियुगहि देखायो ॥
 निरअंकुश अतिनिडर रसिक यश रसना गायो ॥
 दुष्टन दोष विचारि मृत्युको उद्यम कीयो ॥
 बार न बांको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो ॥
 भक्ति निसान बजायकै, काहूते नाहिंन लजी ॥
 लोकलाज कुल शृङ्खला तजि मीरा गिरिधर भजी ॥

दोहा—मारवाड यक देश जो, जैमिल तहँको भूप ॥

तासु सुता मीरा भई, यदुपति भक्त अनूप ॥

बालापनते हरि अनुरागा । अति उज्ज्वल मीरा उर जागा ॥
 खेलहि हरि चरित्रके खेला । हरिमूरति विरचै मृदुढेला ॥
 राधा माधव करै विवाहू । करै सहचरिन सहित उछाहू ॥
 यहि विधि वैस वर्ष दशबीती । दिन दिन दून दून हरि प्रीती ॥
 यक दिन कोउ साधूतहँ आयो । जैमिल भूप भवन बोलवायो ॥
 सुनत शङ्ख ध्वनि मीरा आई । साधुनके चरणन शिरनाई ॥
 संतनमहँ जो रह्यो महंता । सो मूरति पूजै श्रीकंता ॥
 मीरा तिनहि देखि ललचाई । पूछ्यो येको देहु बताई ॥
 कह महंत सुन मीराबाई । या हरिकी मूरति मन भाई ॥
 गिरिधरलालं नाम इन केरो । तू अस मनमें करै निवेरो ॥
 मीरा कह्यो देहु मोहिं काहीं । इनहिं छोड़ि सूझत कछु नाहीं ॥
 माषि महंत गये स्थाना । तासु देव अनुचित अतिमाना ॥
 तेहिं क्षणसे मीरा सब काला । रटन लगी हा गिरिधर लाला ॥

दोहा—बैठी जाय निकेत तजि, खान पान स्नान ॥

गावै यह पद सूरको, सो मैं करौं बखान ॥ ३ ॥

पद—जो विधिना निज वश करि पाऊं ॥

तौ सब कहो होय सखि मेरो, अपनी साध पुराऊं ॥

लोचन रोम रोम प्रति माँगौं, पुनि पुनि त्रास देखाऊं ॥
 यकटक रहै पलक नहिं लागै, पद्धति नई चलाऊं ॥
 कहा करौं छविराशि श्यामघन लोचन द्वै न अघाऊं ॥
 येते पर ये निमिष सूर सुनु, यह दुख काहि सुनाऊं ॥

दोहा—यह गावत मीरहि भये, जल विन सात उपास ॥

भूप बोलाय महंतको, किय वृत्तांत प्रकाश ॥ ४ ॥

ताको मरन निहारि महंता । जैमिलसों तब कह्यो हसंता ॥
 मूरति चहै जो सुता तुम्हारी । करै विनय यदुनाथ पुकारी ॥
 स्वप्न देहिं जो गिरिधर लाला । तौ मैदेहुँ मूर्ति यहि काला ॥
 अस कहि गयो महंतहु डेरा । सोवत में गिरिधर तेहिं टेरा ॥
 चहौ जो भल तुम विन संदेहू । तौ हमको मीरा कहँ देहू ॥
 अर्द्धरात्रि उठि डरचो महंता । आयो भूपति भवन तुरंता ॥
 मूरति मीराके घर दीन्ह्यो । आप गवन वृंदावनकीन्ह्यो ॥
 गिरिधरलाल प्राण सम पाई । मीरा पूजन लगी सदाई ॥
 गिरिधरलाल विना क्षण नहिं । मीरा रहै भवन निज माहीं ॥
 खान पान खेलन दिन राती । गिरिधर सँग करती सब भांती ॥
 मारवाड़ जो देश अमाना । नगर जोधपुर तहां महाना ॥
 जैमिल भूप जाति राठोरा । करत राज्य शासन चहुँ ओरा ॥

दोहा—दुहिता द्वादश वर्षकी, व्याहन योग्य निहारि ॥

पठै पुरोहित उदयपुर, विरच्यो व्याह विचारि ॥ ५ ॥

क्षत्रिय जाति शिरोमणि राना । जाको जाहिर सुयश जहाना ॥
 राना साजि बरात अपारा । व्याहन चलयो मानि सुखसारा ॥
 जैमिल भूप किये व्यवहारा । ह्वैगो जबै द्वारको चारा ॥
 आयो जबै भावैरी काला । तब मीरा कह वचन रसाला ॥
 गिरिधरलाल जाय जब आगे । बैठै मंडप तरे सवागे ॥

तब हम मंडप तरे सिधारब । गिरिधरलाल भावैरी पारब ॥
 भये चकित यह सुनिपितुमाता । कियो प्रथित मीराकी बाता ॥
 गिरिधर लाल तहां लै आई । मंडप तरे दियो बैठाई ॥
 मीरा आय कियो तब चारा । गिरिधरलाल भावैरी पारा ॥
 राना भवन गयो उठि जबहीं । मीरासों माता कह तबहीं ॥
 चरित कौन यह कियो कुमारी । प्रगट कहै सब हेतु उचारी ॥
 तब मीरा नेसुक मुसकाई । मंद मंद सुंदर यह गाई ॥

पद—माई म्हाको स्वप्नमें बरनी गोपाल ।

राती पीती चूनरि पहिरी मेहँदी पाणि रसाल ॥
 काँई औरकी भरौं भांवैरै, म्हाको जग जंजाल ॥
 मीरा प्रभु गिरिधरन लालसों करी सगाई हाल ॥ १॥
 दोहा—यह सुनिकै माता पिता, मीरासों कह वानि ॥
 जो चाहै सो मांगिले, धन माणिक मनमानि ॥ ६ ॥
 तब मीरा पितु मातुसों, बोली यह पद गाय ॥
 कृष्ण विवाह उछाह भरि, नयन प्रवाह बहाय ॥ ७ ॥

पद—देरी अब माई म्हाको गिरिधर लाल ॥

प्यारे चरणकी आनि करतिहौं, और न दे मणि माल ॥
 नात सगो परिवारो सारो, मने लगै मनो काल ॥
 मीराप्रभुगिरिधरनलालकी छवि लखि भई निहाल ॥ २ ॥

दोहा—सुनि मीराके वचन तब, जननी जनक तुराय ॥

प्रथमहि गिरिधरलालको, दिय पालकी चढ़ाय ॥ ८ ॥
 राना लै वरात घर आयो । मीरै वधू प्रवेश करायो ॥
 दुलहिनि दूलह लै तहँ सासू । गे कोहवर कुलदेव निवासू ॥
 तहँ कुलदेव मूर्ति अति पावन । मीरहि पूजा लगीं करावन ॥
 वृद्ध वृद्ध आईं जुरि नारी । लगीं सिखावन रीति उचारी ॥

तब मीरा बोली मुसक्याई । पूजा रीति मोहिं नहिं भाई ॥
 यदुकुलदेव देवकहँ, त्यागी । द्वितीय देवकर सेवन रागी ॥
 कही सासु तब मंजुल बानी । मम कुल रीति बहू नहिं जानी ॥
 ये कुलदेव सदाके म्हारे । पूजे रही सोहाग तिहारे ॥
 यह सुनि चितै चहुंकित मीरा । बोली विधवन लखि मतिधीरा ॥
 इनके पूजत बढै सोहागा । यह जो कह्यो मृषा मोहिं लागा ॥
 ये सब तिय जे तुव घर आई । पूजे ह्वैहैं देव सदाई ॥
 भई कहौ विधवा केहि हेतू । मोहिं दीसैं द्वै चारि निकेतू ॥

दोहा—सासु बहूके वचन सुनि, कह्यो वचन अति कोपि ।

दुलहिनि देहरी देत पग, दई लाज सब लोपि ॥ ९ ॥

और सबै रानाकी रानी । राना सों चलि वचन बखानी ॥
 भयो कुमार विवाह उछाहू । पै यह अति दारुण दुखदाहू ॥
 बहू ठीठि वैकलि बिन लाजू । करै यथोचित नहिं कुलकाजू ॥
 राना सुनि मन मानि गलानी । रानी सों अस गिरा बखानी ॥
 भूतमहलमहँ देहु अवासू । आपहि ते ह्वै जैहै नासू ॥
 तब दुलहिनि मीराको लाई । भूतमहलमहँ दियो टिकाई ॥
 कियो कुँवरकर द्वितीय विवाहू । मीरा मान्यो महा उछाहू ॥
 जो नैहरते सम्पाति लाई । तामें इक मंदिर बनवाई ॥
 गिरिधरलालहि तहां पधारी । पूजहि रोज मानि सुख भारी ॥
 बजैं झांझरी शङ्ख नगारे । गये प्रेत सब देव अगारे ॥
 मीरा नाम जग्यो जगमाहीं । आवैं संत अनंत तहांहीं ॥
 करैं भजन गिरिधरके मंदिर । प्रगटत रोजहि आनंद चंदिर ॥

दोहा—रोजहि संत जेवांयकै, रोजहि चरण पषारि ।

सलिल शीश मीरा धरहि, नयन प्रेम जल ढारि ॥ १० ॥

गिरिधर ढिग लै आप तमूरा । गावै सुंदर पद रचि पूरा ॥

दशा देखि राजाकी रानी । आई सब अति अमरष सानी ॥
 लगीं बुझावन बहुविधि मीरै । क्यों उपजावति कुलकहँ पीरै ॥
 मुडियनको बहु संग नकीजै । निज कुलरीति सदा गहि लीजै ॥
 सुनिहै तुव गति जो महराना । तौ किमि बची तोरि पुनि जाना ॥
 तब मीरा बोली हैंसि वानी । का समुझावहु मोहिं अज्ञानी ॥
 तुमहिं न समुझि परै संसारू । देखिपरै मोहिं नंदकुमारू ॥
 कही सासु तब अमरष सानी । तैं अज्ञानि मोहिं कह अज्ञानी ॥
 मम कुलदेव अहैं यक लिंगा । करै तासु तैं भजन अभंगा ॥
 तब मीरा अस गिरा उचारी । सोउ सेवैं मेरे गिरिधारी ॥
 जाहु सबै घर जनि बतराहू । मेरे मरे न अछु दुख दाहू ॥
 मोहितो संत संग सुख होई । और बात बोलौ जनि कोई ॥

दोहा—अस सुनि मीराके वचन, सासु ननद अनखाय ॥

रानाके ढिग जायकै, दीन्हीं दशा सुनाय ॥ ११ ॥

मीरा चरित सुनत तब राना । कुलकलंक मीराकृत माना ॥
 मनमहँ लीन्ह्यो तुरत विचारी । मीरा जाय कौन विधि मारी ॥
 तब रानी अस कह्यो उपाई । यहि विधि सों नहिं बची बचाई ॥
 जहर घोरि कंचनके प्याला । कहि चरणामृत गिरिधरलाला ॥
 तेहि ढिग भेजिदेहु महराना । पावतही करिहै सो पाना ॥
 राना जहर घोरि यक प्यालै । सासु हाथ पठयो तेहि आलै ॥
 सासु कह्यो मीरा तू जाई । तोरि चूक दिय माफ कराई ॥
 है प्रसन्न तोपर महराना । चरणामृत पठयो भगवाना ॥
 तब मीरा अस वचन बखाना । गिरिधरलाल सत्य भगवाना ॥
 ताकर तुम चरणामृत लाई । मेरो सब विधि दियो बनाई ॥
 अस कहि लियो जहरकर प्याला । कियो पान कहि गिरिधरलाला ॥
 गिरिधरलाल समीप सिधाई । सासु ननद कहँ गई लेवाई ॥

दोहा—तहँ अस पद कहँ विमल रचि, गावनलगी सप्रेम ॥

सो मैं इत लिखिदेतहौं, श्रोता सुनहु सनेम ॥ १२ ॥

पद—रानाजी जहरदियो सो जानी ॥

जिन हरि मेरो नाम निवेज्यो, छज्यो दूध अरु पानी ॥

जबलगी कंचन कसियत नही, होत न बाहिर वानी ॥

अपने कुलको परदा करियो, हम अबला बीरानी ॥

इवपच भक्त वारों तन मन जे, हों हरि हाथ विकानी ॥

मीरा प्रभु गिरिधर भजिवेको, संत चरण लपटानी ॥ १ ॥

हमारे मन राधा श्याम वसी ॥

कोई कहै मीरा भई बावरि, कोई कहै कुल नसी ॥

खोलिकै धुंधुट पारिकै गाती, हरि ढिग नाचत गसी ॥

बृंदावनकी कुंजगलिनमें, भाल तिलक उर लसी ॥

विषको प्याला रानाजी भेज्यो, पीवत मीरा हँसी ॥

मीराके प्रभु गिरिधर नागर, भक्तिमार्ग में फँसी ॥

सोरठा—मीरा यह पदगाय, विषप्याला पीवनकियो ॥

गयो सो गरल विहाय, नशान कीन्ह्यो नेकहु ॥ ११ ॥

तदपिनकछुमनसमइयोराना । सुनन लग्यो पुनि चुगुल बखाना ।

एक समय मीरा हरि दासी । अर्द्धरात्रि हरि प्रेम हुलासी ॥

करि पट बंद मंदिरहि जाई । नाचति गावति भाव बताई ॥

गिरिधरलाल प्रत्यक्ष बताने । मीराके रस वश में ठाने ॥

पुरुष वचन सुनि दासी दौरी । रानासों कह मतिकी बौरी ॥

कोउ यक पुरुष भवन महुँ आयो । मीरासों प्रत्यक्ष बतरायो ॥

सुनि राना सकोपि उठि धायो । कर करिकै करवालहि आयो ॥

खोल्यो पट पूँछ्यो कस मीरा । कौन पुरुष इत रह्यो सधीरा ॥

मीरा कह्यो न नयनन देखों । गिरिधर छोंड़ि द्वितिय कस लेखों ॥

इतै न द्वितिय पुरुष संचारा । छोंड़ि छैल यक नंदकुमारा ॥
मीरा वचन सुनत तब राना । लजित भयो न वचन वखाना ॥
तब मीरा तुरतहि पद ठानै । गावनलगी सुनावत रानै ॥

दोहा—सो पद इत लिखि देतहों, श्रोता सुनहु सचाय ॥

श्रीमीराके पद विमल, मोको अधिक सोहाय ॥१३॥

पद—रानाजी मैं साँवरे रँग रांची ॥

सजि श्रृंगार पद बांधि घूंघुछू, लोक लाजतजि नाची ॥

गई कुमाति लहि साधुकी संगति, भक्तिरूप भई सांची ॥

गाय गाय हरिके गुण निशि दिन, काल व्याल सों बांची ॥

उन बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची ॥

मीरा श्रीगिरिधरनलाल सों, भक्ति रसीली यांची ॥५॥

दोहा—सुनि मीराकी वाणि प्रभु, मनमें मानि गलानि ॥

गवन कियो निज भवनको, रवण रमापति जानि १४॥

पुनि मीरा सब संत समाजा । बैठनलगी छोंड़ि कुल लाजा ॥

एक समय इक साधु सिधायो । मीराको अस वचन सुनायो ॥

मीरा तुम गिरिधरकी दासी । मैं गिरिधरको दास हुलासी ॥

मोहिं दियो गिरिधर यह शासन । जाय करो मीरा दुख नाशन ॥

ताते अंग संग मोहिं दीजै । गिरिधरको शासन गुणिलीजै ॥

मीरा कही भली यह बाता । भोजन करहु अबहिं तुम ताता ॥

अस कहि सादर संत जेवाई । साधु समाजहिं सेज बिछाई ॥

कह्यो साधुसों मनकी कीजै । सकल दुचित चितकीतजि दीजे ॥

साधु कह्यो कहूँ जनके यूहा । होती केलि कला करि कूहा ॥

मीरा कह्यो न कहूँ यकंता । कहो ठोर जहँ नहिं श्रीकंता ॥

वसहिं तनुहि महँ देव अपारा । रवि आदिक अश्वनीकुमारा ॥

ते सब पाप पुण्य कहि देते । यम जस उचित दंड तोहिं देते ॥

दोहा—मीराके अस वचन सुनि, हिय पट खुले तुरंत ॥
 गह्यो चरण कहि करु क्षमा, देहि भक्ति भगवंत ॥ १५ ॥
 तब मीरा यह गाय पद, दियो मंद मुसकयाय ॥
 संत मंडली चरित लखि, रहे सबै शिरनाय ॥ १६ ॥
 पद—येरी मैंतो दरददिवानी मेरा दरद नजानै कोय ।
 घायलकी गति घायल जानै और नजानै सोय ॥
 छूरी ऊपर सेज हमारी पौढ़न केहि विधि होय ।
 मीराको दुख तबहिं मिटै जब वैद सँवलिया होय ॥ १७ ॥
 दोहा—यहि विधि मीराको सुयश, प्रगट्योसकल जहान ।
 बादशाह अकबर सुन्यो, दरश हेतु हुलसान ॥ १८ ॥
 तानसेनको संगलै, अपनो वेष छिपाय ।
 आयो मीराजी निकट, बैठतभो शिरनाय ॥ १९ ॥
 तानसेन पूछतभयो, गानभेद बहु नेत ।
 सो मैं भाषा इत लिखौं, सबके समुझन हेत ॥ २० ॥

तानभेद, रागभेद, वाद्य वादक लक्षण तालनके भेद इत्यादि ॥
 तब श्रीमीराजी विस्तारते पूर्ण तानभेद, अपूर्ण तानभेद, पुनरु-
 क्त तानभेद, तीनिग्राम सप्तस्वर छप्पन मूर्छना ते सब करिकै
 फेरि ताल एकसै बीस तिनके नाम भेद फेरिदुइसै
 चौंसठि राग जे संगीत रत्नाकरादि ग्रंथोंमें तिनके नामभेद
 कह्यो पुनि रागनके आलापके वर्ण ते कह्यो फेरि जौन
 राग जौन ऋतु में जौन पहरमें गाइवे योग्यहै और
 जौन रागको जौन देवताहै सो कह्यो फेरि भाषांग
 कृपांग उपांग और इनके नाम भेद कह्यो फेरि वीणा लक्षण
 फेरि मृदंगकी उत्पत्ति कह्यो फेरि वादक चरित प्र-
 कार वादक १ मुखरी २ प्रतिमुखरी ३ गीतानुग ४ तिनके सब

लक्षण कह्यो अरु त्राटनजोबाव ताके वर्ण कह्यो फेरि उत्तनिग्रह
समअतीत अनागत तिनके लक्षण कह्यो फेरि वाद्य प्रबंधमें
तीनि प्रकारके लयद्रुत मध्य विलंबित इनके लक्षण अरु जौन
गृहमें जौन लय रहैहै सो कह्यो फेरि चंचत्पुट चाचपुट जे ता-
ल और जे वर्ण बोल बजावतमें निकसैं ते कह्यो फेरि गीतमा-
हात्म कह्यो तब बादशाह अकबर औरगानवेत्ता तानसेन ते म-
ग ह्वैगये बार बार मीराको सराहिकै प्रणाम कियो अरु अ-
पने मनमें जानिलियो कि जो मीराजीको श्रीगिरिधरलालजी
प्रत्यक्षहैं सो बात सत्यहै फेरि तानसेन ओर ताकि मीराजीसों
अपनो उबार पूछ्यो तब मीराजी राजनीति कहिकै फेरि सा-
धुनके दरश परशते सबहीको उद्धार होयहै यह कह्यो ॥ ३ ॥

दोहा—पुनि मीरा बोली वचन, सुनहु अकब्बरशाह ।

कहों एक इतिहासमें, ज्ञान विमल जेहिमांह ॥२०॥

कोऊ भूप रह्यो इक पापी । सब जीवनको अति संतापी ॥
इक दिन खेलन गयो शिकारा । मग आवत इक साधु निहारा ॥
साधू रहै लगाये छाता । ताहि देखि नृप अमरष माता ॥
कह्यो उतारहु छत्र तुरंता । नातो होत अबहिं तुव अंता ॥
साधु घामवश छत्र न टार्यो । तब राजा तेहि नेजा मार्यो ॥
भूपति आयुध हन्यो कितेकौ । हरि रक्षित लागी नहिं येकौ ॥
छत्र उतार्यो साधु डेराना । भूपतिके उपज्यो कछु ज्ञाना ॥
छत्र उठाय साधुको दीन्ह्यो । सो अपने आश्रम मग लीन्ह्यो ॥
मर्यो भूप लैगे यमदूता । देन लगे यमदंड अकूता ॥
चित्रगुप्त कह कछु किय धर्मा । साधुहि दियो छत्र अतिधर्मा ॥
यम कह ल्याउ विकुंठ देखाई । लैगे दूत ताहि दौराई ॥
लखत विकुंठ लखे हरिदासा । ताहि देखायो अपने पासा ॥

दोहा—यमदूतनते कर फटक, गयो भूप हरिधाम ॥

साधुहि छत्र प्रदानते, भयो भूप कृतकाम ॥ २१ ॥

ऐसो साधु प्रभाव तुम, गनहु अकबर शाहि ॥

सकलसुकृतको मूल किय, संत प्रशंसत जाहि ॥ २२ ॥

पुनि अकबरके सन्मुखै, तकि गिरिधरके ओर ॥

मीरा गायो विमल पद, सकल संत चित चोर ॥ २३ ॥

पद—माईरी में सँवलिया जानो नाथ ।

लेन परचो अकबर आयो तानसेन लै साथ ॥

राग तान इतिहास श्रवण करि, नाथ नाथ महिमाथ ॥

मीराके प्रभु गिरिधर नागर, कीन्ह्यो मोहिं सनाथ ॥ १ ॥

दोहा—जादिन मीरा दरश करि, अकबर आयो धाम ॥

तादिन कोउ अकबर उपर, करिकै मारन काम ॥ २४ ॥

पुरश्चरण अति घोर किय, हनुमानको ध्याय ॥

पवनपूत कोपित महा, तुरत आगरे आय ॥ २५ ॥

अकबरको मारन गयो, धारे गदा कराल ॥

तहँ ठाढ़े देखत भयो, दोऊ दशरथलाल ॥ २६ ॥

तब प्रभुपद शिरनायकै, आयो लौटि तुरंत ।

करताके शिर देत भो, गरु गदा हनुमंत ॥ २७ ॥

यह मीराके दरशको, जानहु सकल प्रभाव ॥

मरत भयो अकबर अमर, राखि लियोर घुराव ॥ २८ ॥

येतेहु पै राना कुमति, मीरहि जान्यो नाहि ॥

मीरासों करि वैर अति, भूलि रह्यो जगमाहि ॥ २९ ॥

यक डब्बामें अहि अति कारो । मीरा पूजन समय विचारो ॥

यक दूती कर भेज्यो धामा । लहिये यामें शालिग्रामा ॥

दूती कह मीरासों जाई । शालिग्राम लेहु सुखदाई ॥

मीरा महालाभ मन मानी । दूतीको किय दारिद हानी ॥
 गिरिधर पूज्यो गिरिधर प्यारी । पुनि डब्बाको लियो उधारी ॥
 शालिग्राम शिला तेहि भाँहीं । निरखत भे सब संत तहाँहीं ॥
 शालिग्राम शिला कहँ पाई । मीरा बार बार बलिजाई ॥
 पूज्यो नयनन हृदय लगायो । यह अचरज सबके मन आयो ॥
 रानासुनि अतिविस्मित भयऊ । तबहुँ न राग रोष मन गयऊ ॥
 पुनि मीरा गिरिधर ढिग आई । प्रेम मगन दृग आंशु बहाई ॥
 गावन लगी विमल पद रचिकै । भाव बतावाति सन्मुख नचिकै ॥
 ते पद में इत लिखौ बनाई । सुनहु सकल श्रोता मन लाई ॥

दोहा—मीराजीके विमल पद, तिनमें अतिशय भाव ।

सुनत गुनतगावत जपत, अतिशय होत उराव ३०
 पद—डब्बाके शालिकराम बोलत कायनहियां ।

हम बोलत तुम बोलत नहीं, काहेको मौन धरे पहियां ॥
 यह भवसागर अगमबड़ोहै, काढ़िलेहु गहिकै बहियां ।
 मीराके प्रभु गिरिधर नागर, तुमहींहो मोर सहहियां ॥१॥
 राना म्हारों कांई करिहै मीरा छोड़िदई कुल लाज ।
 विषको प्याला रानाजीने भेज्यो मीरा मारन काज ॥
 हाँसिकै मीरा पायगईहै, प्रभु प्रसाद पर राग ।
 डब्बा इक रानाजी भेज्यो, उसमें कारा नाग ॥
 डब्बा खोलि मीरा जब देख्यो, हँगयौ शालिग्राम ।
 जय जय ध्वनि सब संत सभा भइ, कृपा करी घनझ्याम ॥
 संजि शृंगार पग बांधि घूंघूरू, दोउ कर देती ताल ।
 ठाकुर आगे नृत्यकरत रही, गावत श्रीगोपाल ॥
 साधु हमारे हम साधुनके, साधु हमारे जीव ।
 साधुन मीरा मिलि जो रहीहै, जिमि माखन मे घीवा ॥२॥

दोहा—एक समय मीरा तनुहि भई व्यथा अतिघोर ।

तब यह पद गावनलगी, सकल सुखद शिरमोर ३१

पद—बड़िबड़ि अँखियन वारो सांवरो मोतन हेरो हँसिकैरी।

हौं यमुनाजल भरन जातही, शिर पर गागरि लसि कैरी॥

सुंदरश्याम सलोनी मूरति, मो हियरे में वसिकैरी ।

जंतरलिखिल्यावोमंतरलिखिल्यावो, औपधिलावोवसिकैरी

जो कोउ लावै श्याम वैदको, तो उठिवैठों हँसिकैरी ॥

भ्रुकुटिकमानबाणवाकेलोचन, मारत भरिभरि कसिकैरी

मीराके प्रभु गिरिधर नागर, कैसे रहौं घर वसिकैरी॥१॥

दोहा—एतेहुपै राना कुमति, तज्यो न हट शठ जोर ।

भजन करत मीरै लग्यो, करन उपद्रव घोर ॥ ३२ ॥

तब मीरा यह पत्रिका, विनती प्रेम प्रकाश ।

पठै दियो यक संतकर, तुलसिदासके पास ॥ ३३ ॥

भजन—स्वास्तिश्री तुलसी गुण दूषण हरण गोसाईं । बारहिंवार

प्रणाम करहुँ अब, हरहु शोक समुदाई ॥ घरके स्वजन हमारे

जेते, सबन उपाधि बढ़ाई । साधु संग और भजन करत मोहिं,

देत कलेश महाई ॥ बालपनेते मीरा कीन्हीं, गिरिधरलाल

मिताई ॥ सोतो अब छूटत नहिं क्योंहूँ, लगी लगन वरियाई ॥

मेरे मात पिताके सम हौ, हरि भक्तन सुख दाई ॥ हमको कहा

उचित करिबोहै, सो लिखियो समुझाई ॥१॥

दोहा—मीराकी लहि पत्रिका, तुलसी भरि आनंद ।

तासु उतर यह लिखत भो, सुमिरत दशरथ नंद ॥ ३४ ॥

पद—जिनके प्रिय न राम वैदेही ॥

तिन त्यागिये कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥

पिता तज्यो प्रह्लाद विभीषण, बंधु भरत महतारी ।

बलि गुरुतज्यो कंत ब्रजवनितन, भे जग मंगलकारी ॥
 नातो नेह रामसों सांचो, सुकृती संत जहांलों ।
 अंजन कहा आंखिजो फूटै, बहुतक कहाँ कहाँलों ॥
 तुलसीदास पूज्य सोइ पीतम, पुत्र प्राण तेप्यारो ।
 जाको लग्यो सनेह रामसों, सोइ जगहितू हमारो ॥

सवैया—सो जननी सो पिता सोइ, भाई सो भामिनि सो सुत
 सो हित मेरो । सोई सगो सो सखा सुत सेवक, गुरु सो सुरसाहब
 चरो ॥ सो तुलसी प्रिय प्राण समान, कहाँ लों बनाय कहाँ बहु
 तेरो । जो तजि देहको गेहको नेह, सनेहसों रामको होय सवेरो २॥

दोहा—यह तुलसीकी पत्रिका, मीरा सादर लीन ।

वृंदावनको चलि दियो, कुल नातो तजिदीन ॥३५॥

रच्यो विमल ये युगल पद, नागर नवल संभारि ।

श्रोता सुनहु सप्रेम सब, मैं इत लिखों विचारि ॥३६॥

भजन—मेरो मन लग्यो सखी सँवलियासों, काहूकी वरजी
 नाहिं रहौंगी ॥ जो कोउ मोंको एक कहैगी, एक की लाख कहौंगी ॥
 सासु बुरीहै ननैद हठीली, यह दुख काहिं बहौंगी । मीरा प्रभु
 गिरिधरके कारण, जग उपहास सहौंगी ॥ मेरे गिरिधर गोपाल
 दूसरा न कोई । जाके शिर मोरमुकुट मेरो पाति सोई ॥ शंख
 चक्र गदा पद्म कंठ माल जोई । संतन ढिग बैठि बैठि लोक
 लाज खोई ॥ अबतो बात फैलिगई जानै सब कोई । मैंतो परम
 भक्ति जानि जक्त देखि मोई ॥ मात पिता पुत्र बंधु संग नाहिं
 कोई । मैं पियाको देखि हँसी लोग जान रोई ॥ अँसुवन जल
 सींचि २ प्रेम बेलि बोई । लोक त्रास छौंड़िदियो कहा करै कोई ॥
 मीराकी लगन लगी होनि हो सोहोई ॥ २ ॥

दोहा—मीराजी राना निकट, ये द्वै पद पठवाय ।

आप बसी तुलसी विपिन, संत समाजहि जाय ॥३७॥

कवित्त—देव मुनि पूजत अतीव प्रिय माधवको, जीव जहां
जात मुक्ति पावै रजधारते ॥ धन्य धरणीको, धरि कलिको कुकाम
करि, पापी परगति भरि दरश करारते ॥ रघुराज जाको यदुरा
ज नाहिं छोड़ै क्षण, बारा वन बारा उपवनके विहारते । सस्ती
अति सौदा बिकै गृहिन विरक्तनको वृंदावन वीथिनमें मुक्तिके
बजारते ॥ १ ॥

दोहा—ऐसी तुलसी विपिनमें, मीरा कियो प्रवेश ।

बारावन उपवन सकल, विचरत भई हमेश ॥ ३८ ॥

सखीरूप तहँ हूँ गई, टेरत गिरिधर नाम ।

एक दिवश कहुँ कुंजमें, आय मिले तेहि श्याम ॥३९॥

तब यह पद गावत भई, कुंजन कुंजन टेरि ॥

सादर सब श्रोता सुनहु, लिखत अहों इत हेरि ॥४०॥

पद—लावनी ॥ आजुहों देख्यों गिरिधारी ॥

सुंदर वदन मदनकी सोभा चितवनि अनियारी ।

बजावै वंशी कुंजनमें ॥

गावत ताल तरंग रंग ध्वनि नचत ग्वाल गनमें ॥

माधुरी मूरतिहै प्यारी ॥

वसी रहै निशि दिन हिरदै में टरे नहीं टारी ॥

ताहि पर तन मन वारी ॥

वह मूरति मोहनी निहारत लोक लाज डारी ॥

तुलसीवन कुंजन संचारी ॥

गिरिधर लाल नवल नटनागर मीराबलिहारी ॥

पद—जबते मोहिं नंदनंदन दृष्टि परचो माई ॥

तबते परलोक लोक कछूना सोहाई ॥
 मोर मुकुट चंद्रिकासु शीश मध्य सोहै ॥
 केसरि को तिलक उपर तीनि लोक मोहै ॥
 साँवरो त्रिभंग अंग चितवनिमें टोना ॥
 खंजन औ मधुप मीन भूलै मृग छोना ॥
 अधर बिम्ब अरुण नयन मधुर मंदहांसी ॥
 दशन दमक दाड़िम द्युति दमकै चपलासी ॥
 क्षुद्र घंटिका अनूप नूपुर ध्वनि सोहै ॥
 गिरिधरके चरण कमल मीरा मन मोहै ॥

दोहा—उद्धव कुंड सिधारिकै, पुनि गोपी सम्वाद ॥

मीरा गायो विमल पद, भारि उरविरह विषाद ॥४१॥

पद—साँवरेकी दृष्टि मानौं प्रेमकी कटारीहै ॥ लागत विहाल
 भई गोरसकी सुरति गई, तनहूं में व्याप्यो काम मद मतवारीहै ॥
 चंद्रतो चकोरनीके दीपक पतंग दाहै, जल बिन मीन जैसे अधि
 क पियारीहै ॥ सखी मिलि दोई चारि वावरी भई निहारि, मैं
 तो याको नीके जानो कुंजको विहारी है ॥१॥ तिहारे कुबिजाही
 मन मानी हमसे न बोलना हो राज ॥ हमसों कहै सोहाग उतारो
 दृग अंजन सबहीं धोय डारो, माथे तिलक चढ़ाओ पहिरि चोल
 ना हो राज ॥ हमरी कही विषै सम लागै घर घर जाय भँवर रस
 जागे उन्हींकेसँग रहना सहना बोलना होराज ॥ वृंदावनमें धेनु
 चरावै वंशीमें कछु अचरज गावै, बांकी तान सुनावै बोलियां
 बोलना होराज ॥ हमरी प्रीति तुम्हें सँग लागी लो
 कलाज सब कुलकी त्यागी मीराके गिरिधारी वन वन डोलना
 होराज ॥ २ ॥

दोहा—बंशीवट तटके निकट, येक समय रट लाय ॥
 मीरा गायो युगलपद, परम प्रीति रस छाय ॥ ४२ ॥
 पद—रस भरिआं महाराज मोको आय सुनाई बांसुरी ॥
 सुनत बांसुरी भई बावरी निकसन लागी सांसुरी ॥
 रकत रतीभर ना रह्यो न मासा मांसुरी ॥
 तनुतोलाभर ना रह्यो रही निगोड़ी सांसुरी ॥
 मैं यमुनाजल भरन जाति थी सासु ननैदकी त्रासुरी ॥
 मीराके प्रभु गिरिधर मिलिगे पूजी मनकी आसुरी ॥
 बाजनदे गिरिधरलाल मुरली बाजनदे ॥
 सप्त सुरन मुरली बजी कहूँ कालिंदीके तीर ॥
 शोर सुनत सुधि ना रही मेरी कित गागारि कितनीर ॥
 बैठि कदमके चौतरा सब ग्वालन लिये बोलाय ॥
 खेलत रोकत ग्वालिनी मुरली शब्द सुनाय ॥
 पांसा डारे प्रेमके मेरो सब धन लैगे लूटि ॥
 मीराके प्रभु साँवरे तुम अब कहँ जैहौ छूटि ॥ २ ॥
 दोहा—गोकुलमें पुनि आयकै, गोकुल नंद सँभारि ॥
 मीरा गायो एक पद, सो मैं कहँ उचारि ॥
 पद—सखि मोहिं लाज वैरिन भई ॥
 चलत लाल गोपाल पियके संग क्योंना गई ॥
 चलन चाहत गोकुलहिंते रथ सजायो नई ॥
 रुक्मिणी सँग जाइवेको हाथ मोजत रई ॥
 काठिन छाती श्याम विछुरत विहारि क्योंना गई ॥
 तुरतलिखि संदेश पियको काहि पठऊँ दई ॥
 कूबरी सँग प्रीति कीनी मोहिं माला दई ॥
 दास मीरा लालगिरिधर प्राण दक्षिनादई ॥ १ ॥

दोहा—जीव गोसांई कोउ रहे, हरि रति रसिक सुजान ॥

कबहुँ तासु पद दरश हित, मीरा मन हुलसान ॥ ४४ ॥

जीवगोसांई पाय सुधि, कहि पठयो तेहि पास ॥

मैं नारी मुख लखहुँ नहिं, नेम कियो तजि आस ॥ ४५ ॥

कहि पठयो मीरा तबै, परदो बीच लगाय ॥

संभाषण कीजै प्रभू, उभै अर्थ साधि जाय ॥ ४६ ॥

जीवगोसांई मानि तब, भेज्यो ताहि बोलाय ।

पटकेंवार के ओटमें, बैठी सो शिरनाय ॥ ४७ ॥

मीरा तब कर जोरिकै, बोली वचन सप्रेम ।

प्रीति रीति मिसि त्यागि रिसि, तजै गोसांई नेम ॥ ४८ ॥

कवित्त—आजलैं कानन में तुलसीवन कानन मैं न सुनी
कहुँ ठाई ॥ वेद पुराणनहूँके वखान सुजानन आननमें नहिं
पाई ॥ श्रीरघुराज विना ब्रजराज दुती नहिं पूरुष पूरुषनाई ॥ तू-
द्विती पूरुष हूँ कस बैठे अहौ ब्रजमें अब जीवगोसांई ॥ १ ॥

तामैं प्रमाण—वासुदेवः पुमानेकः स्त्रीप्रायमितरज्जगत् ।

दोहा—सुनि मीराके वचन वर, कृष्ण मिलापी जानि ।

जीव गोसांई छोड़ि पट, मिले ढारि अँसुवानि ॥ ४९ ॥

यहि विधि ब्रजमंडल सकल, मीरा वसि बहु काल ॥

गई उदैपुरको कबहुँ, जानन राना हाल ॥ ५० ॥

रानाकी लखि विषम मति, किय द्वारका पयान ।

क्षण क्षण हरिगुण गावती, संत संग सहसान ॥ ५१ ॥

भजन—द्वारकाको वास हो मोहिं द्वारकाको वास ।

शंख चक्रहुँ गदा पद्महुँ ते मिटै यमत्रास ॥

सकल तीरथ गोमतीमें करत नित्य निवास ।

शंख झालरि झांझ बाजै सदा सुखकी रास ॥

तज्यो देशौ वेष पतिगृह तज्यो संपति राजि ।
 दासि मीरा शरण आई तुम्हें अब सब लाजि ॥ १ ॥
 दोहा—दरशन करि रणछोड़के, ह्वै प्रसन्न पद गाय ॥
 नृत्य करै आनंद भरै, दशावर्णि नहिं जाय ॥ ५२ ॥
 इतै उदैपुरमें भयो, रानाको उत्पात ।
 बोलि कही उपरोहितन, दुखित भये अति गात ॥ ५३ ॥
 लावहु मीराको इतै, तबतो जीवन मोर ।
 कहा कहौं कहिजात नहिं, भयो मोहिं अति भोर ५४
 उपरोहित चलि द्वारका, बैठि धरन करि दीन ।
 कह्यो चलहु मीरा भवन, नातो जिय अबलीन ॥ ५५ ॥
 तब मीरा रणछोड़पै, बिदाहोन हित जाय ।

ये त्रय पद रचिकै कियो, विनती आंसु बहाय ॥ ५६ ॥

भजन—आई छूंजी राजा रणछोड़ शरणै थांथै आई छूंजी रा-
 जारणछोड़ ॥ हितसूं ब्राह्मण भेजदियाहै लावोनीमेडतणीवहो-
 ड धरम संकट दीयोब्राह्मणा बैठी मंदिरमेंदोड़ ॥ आपणी ढिग
 राखिसांवरा विनती करूं करजोड़ ॥ कैमें पाछी जाऊं जगतमें
 लागै ह्यानै मोटीखोड़ ॥ भयो प्रकाश मंदिरमें भारी उगा
 सूरजकिरोड़ ॥ ऐसो रूप देख कृष्णको आई मंदिरमें दोड़ ॥
 नीर खीर ज्यों मिलग्या सजनी परमानंदकीऔड़ ॥ जनलिछ-
 मणसाजोजमुगतमें धनि मीरा राठोर ॥

भजन—यहपदप्रस्ताऊ ॥ हरि तुम हरौ जननकी भीर ।

द्रौपदीकी लाज राखी तुम बढ़ायो चीर ॥

भक्त कारण रूप नरहरि धरचो आप शरीर ।

हिरण्यकश्यपु मारिलीन्ह्यो धरचो नाहिन धीर ॥

बूढ़तहीं गज ग्राह मारो कियो बाहर नीर ।

दासि मीरा लालगिरिधर दुष्ट जहँ तहँ पीर ॥ १ ॥
 ज्यों जानो त्यों लिये सजन सुधि ज्यों जानौ त्यों लीजै ।
 तुम विन मेरे और न कोऊ कृपा रावरे कीजै ॥
 वासर भूख न रैन न निद्रा यह तनु पल पल छीजै ॥
 मीरा प्रभु गिरिधर नागर अब मिलि विछुरन नहिं जीजै ।
 दोहा—नृत्यत नूपुर बांधिकै, गावत लै करतार ।
 देखतही हारिमें मिली, तृण सम गनि संसार ॥ ५७ ॥
 मीराको निज लीन किय, नागर नंदकिशोर ।
 जग प्रतीत हित नाथ मुख, रघ्यो चूनरी छोर ॥ ५८ ॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे
 सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अथ गोस्वामिकी कथा ॥

दोहा—विष्णुपुरी गोस्वामिकी, कथा कहौं अभिराम ॥
 कलि जीवन उद्धार हित, प्रगट्यो जो जग ठाम ॥ १ ॥
 श्रीभागवत पुराण जो, शोभित सिंधु समान ॥
 खैंचि भक्त रत्नावली, विरच्यो ग्रंथ महान ॥ २ ॥
 तामें भगवत धर्म बखाना । और धर्मको किय न प्रमाना ॥
 कृष्ण कृपा फल लगिवोकांहीं । दरशायो सत्संगहि माहीं ॥
 खैंचि भागवत किय यह ग्रंथा । वरणों तासु हेतुको पंथा ॥
 नाम कृष्ण चैतन्य सुसंता । एक समय में अति मुदवंता ॥
 जगन्नाथ क्षेत्रहिमें जाई । भक्त समाज लिये सुखदाई ॥
 बैटो रहो शिष्य तिनकेरो । विष्णुपुरी जो रहै निवेरो ॥
 ताको करत काशिमें वासा । बीति गये बहु दिन सहलासा ॥
 कहे वचन सब संत सुनाई । विष्णुपुरी जो काशी जाई ॥

बहु दिन वस्यो सो अस हम जानै । श्रीपति भक्ति निरादर ठानै
कीन्ह्यो अहै मोक्षकी चाह । सुनिये वचन स्वामि सउछाहा ॥
संतनकी आशय उर जानी । लेन परीक्षा तेहि गुणखानी ॥
विष्णुपुरीको पत्र लिखायो । यक अमोल मणिमाल सुहायो ॥

दोहा—हमको देहु पठाय उत, मेरे मन अति चाह ।

पठवायो तेहि बांचिकै, विष्णुपुरी सउछाह ॥३॥

अपने मनमें कियो विचारा । जो गुरु करिकै कृपा अपारा ॥
मांगि पठायो है मणिमाला । देहु पठाय सोई अब हाला ॥
अस विचारि भागवतहिको तब । भक्त परत्व रत्नको अति नव ॥
दास लिखाय दियो पठवाई । दियो मुक्तिको खोदि बहाई ॥
तामें प्रियादासको भाखा । एक कवित्त मुदित लिखि राखा ॥

कवित्त—जगन्नाथ क्षेत्र माँझ बैठे महाप्रभुजू वै, चहुं
ओर भक्त भूप भीर अति छाई है ॥ बोले शिष्य विष्णु
पुरी काशी मध्य रहैं याते, जानि पुनि मोक्ष चाह नीकी मन
आई है ॥ लिखि प्रभु चीठी आप मणिगण माला एक, दीजिये
पठाय मोहिं लागत सुहाई है ॥ जानि लई बात निधि भागवत
रत्नदाम, दर्ई पठै आदि मुक्ति खोदिकै बहाई है ॥ १ ॥

दोहा—स्वामी कृष्ण चैतन्यके, रहे संग जे संत ।

ते वह माल निहारिकै, पाये मोद अनंत ॥ ४ ॥

सबके भई प्रतीति यह, विष्णुपुरी सति भक्त ।

वृथा कियो हम भ्रम सबै, परि अनित्य यहि जक्त ॥५॥

भक्त भीर तेहि ठाम जो, रही कहौं तिन नाम ।

लालदास गोविंद अरु, रघुनाथहु अभिराम ॥ ६ ॥

रामभद्र यदुनंदनौ, गोपिनाथ रघुनाथ ।

गोविंद रामानंदजी, प्रेमी अति रघुनाथ ॥ ७ ॥

मुरलीधर हरिदास अरु, है मुकुंद भगवान् ॥

केशवदास चरित्र अरु, वेणीदास महान् ॥ ८ ॥

संत जयंत गंभीरहु दास । गोविंद जीत अर्जुनहु दास ॥
 और जनार्दन दामोदर है । संत गदाजी औ ईश्वर है ॥
 हेम मयानंद और गुठीले । तुलसी गौरीदास रंगीले ॥
 वनिया राम गणेश प्रसिद्धा । दाऊजी जगदीशहु सिद्धा ॥
 लक्ष्मणदास इयास ले जानो । लाखा और गोपाल बखानो ॥
 नरसी देवदास नंददासा । और किशोर गोपालहु दासा ॥
 संत चतुर्भुज औ हरिदासा । विमलानंद बालकहु दासा ॥
 संतदास औ दास सुरारी । मानदास गिरिधर सुखकारी ॥
 गोकुलनाथ और बनमाली । नारायण राघो अब घाली ॥
 माधवदास और हरिदासा । जीवानंद परमानंद खासा ॥
 स्वामि कृष्णचैतन्य महाना । निकट लसत ये संत अमाना ॥
 मुक्तिहुकाहि निरादर कीन्हें । भक्तिहि प्रतिपादन मन दीन्हें ॥

दोहा—विष्णुपुरी कृत भक्तकी, रत्नावलि जो ग्रंथ ॥

जीवनको उपदेश करि, करिदीन्ह्यो हरिपंथ ॥ ९ ॥

विष्णुपुरी होते भये, ऐसे संत महान् ॥

तिनके चरित अनंत हैं, मैं कुछ कियो बखाना ॥ १० ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे अष्टाशी-

तितमोध्यायः ॥ ८८ ॥

अथ तिलोचनदासकी कथा ॥

दोहा—वणिक तिलोचनदासकी, कथा कहौ सुखधाम ॥

ज्ञानदेवके शिष्यवर, संतनमें सरनाम ॥ १ ॥

तिनकी कथा सुनै जो कोई । तेहि उर राम भक्ति दृढ़ होई ॥

करनलगे साधुनकी सेवा । प्रीति सहित सम गुणि हरिदेवा ॥
 रहहिं गेह में नितयुत् नारी । करैं यही अनुमान सुखारी ॥
 ऐसो कोउ चाकर जो मिलतो । संतसेव जो नितप्रति करतो ॥
 संतनके अनुकूल सदाहीं । चलै मिलव दुर्लभ जगमाहीं ॥
 करत एक दिन यहि हित ध्याना । भक्त मनोरथ कर भगवाना ॥
 रूप एक नरको वपुधारी । आये ताके निकट सिधारी ॥
 टूटी पनहीं पायन माहीं । ओढ़े फटी कमरिया काहीं ॥
 पूंछयो निरखि तिलोचनदासा । कहँते आये कहां निवासा ॥
 कहां मातु पितु अहै तुम्हारो । नहीं गुरू सँग परै निहारो ॥
 तब बोल हरि वचन सुखारी । अहौं भृत्य नहिं पितु महतारी ॥
 जो कोउ अपने गृह महराखै । तौ रहिजाउँ यही अभिलाखै ॥

दोहा—कह्यो तिलोचन वचन तब, मेरे ढिग रहिजाहु ॥

कह्यो सो अनमिल बात यह, उर अति भरो उछाहु ॥ २ ॥
 सात सेर भोजन नित चहहूं । नित सेवामें हाजिर रहहूं ॥
 यामें मन विगारिहै कोई । तौ मेरो क्षण रहन न होई ॥
 कह्यो तिलोचन तब हरपाई । करहु यथेच्छित अशन सदाई ॥
 संतन सेवन करहु निशंका । यही काम मेरे अति वंका ॥
 तामें बीच परै नहिं नेको । और काम मेरे नहिं एको ॥
 प्रियादास तामें जो भाखा । इक कवित्त सो इत लिखिराखा ॥

कवित्त—चारिहूं वरणकी जो रीति सब मेरे हाथ, साथहूं न
 चाहौ करौ नीके मन लायकै । भक्तनकी सेवा सोतो करतहीं
 जन्म गयो, नयो कछू नाहिं डारे वरस वितायकै ॥ अंतर्द्वारमी
 नाम मेरो चेरो भयो तेरे हौंतौ, बोले भक्तभाव खावो अतिहीं
 अचायकै । कामरी पन्हैया सब नई करि दई और, नीके नहवा-
 यो तनु मैलको छोंडायकै ॥ १ ॥

बोल्यो फेरि तिलोचनदासा । निज नारीसों सहित हुलासा ॥
जो ये भोजन करैं सदाहीं । सो भोजन दीजै इनकाहीं ॥
कुवचन कबहुँ न किहेहु उचारा । यह सेवोहै संत अपारा ॥
अस कहि संतन सेवामाहीं । सादर दिय लगाय तेहिकाहीं ॥
भृत्य रूप तनु श्रीभगवाना । आवहिं नित जे संत महाना ॥
तिनके प्रथमहि तेल लगाई । सुंदर जल स्नान कराई ॥

दोहा—बहुविधि अशन करायकै, पलंगा महँ पौढाय ॥

चरणनापि दोउ चोपयुत, सुखसों देहि सोवाय ॥३॥
आवहिं जहां संतजन जितने । धरि हरिरूप भृत्य तनु तितने ॥
करनलग्यो इमि संतन सेवन । जानतभयो कोऊ यह भेवन ॥
साधु तिलोचनदासहिकेरो । जाहिं प्रशंसत सुयश घनेरो ॥
संत तिलोचनकी यहि भांती । साधुनकी सेवाभै ख्याती ॥
ऐसेहिं बीते तेरह मासा । इक दिन तीय तिलोचनदासा ॥
गई परोसिनिके ढिगमाहीं । सा पूँछ्यो सादर तेहिकाहीं ॥
दुर्बल काहे परति लखाई । सो यह वाणी दई सुनाई ॥
एक टहलुवा अहै हमारा । सात सेर सो करत अहारा ॥
पीसत ताके हेत पिसाना । दूबार मैं ह्वै गई महाना ॥
जानि तुरंत नाथ भगवाना । ताके घरते कियो पयाना ॥
महादुखी तब भयो तिलोचन । पूँछ्यो तियसों करि अति सोचन ॥
तेहि तिय यह वृत्तांत बतायो । सुनि रोवन लाग्यो रिस छायो ॥

दोहा—हाय कहां अस भृत्यमें, पाऊं किय अस शोर ॥

बिन जल तीनि उपास पुनि, करत भयो तेहिं ठोर ॥४॥

तब अकाशते प्रगट ह्वै, बोले श्रीभगवान ॥

तेरे प्रेम अधीन हौं, मैं हे साधु सुजान ॥ ५ ॥

जो तेरे मनमें यही, तौ धरि सोई रूप ॥

आय भुवन तुव संतको, करिहौं सेव अनूप ॥ ६ ॥
 रह्यो टहलुवा रूपते, मैं ही तेरे ऐन ॥
 सुनत वणिक व्याकुल भयो, जान्यो हरिको शैन ॥ ७ ॥
 हरि विन कौन दयालु अस, गुण्यो तिलोचनदास ॥
 अस उनहीं सों वनि परै, मोहिं तिनहिंकी आश ॥ ८ ॥
 मैं कौनहुँ लायक नहीं, कैस्यहु पाऊं नाथ ॥
 चरण रहौं लपटायतौ, कवहुँ न छोडों साथ ॥ ९ ॥
 संत तिलोचनदासके, ऐसे चरित विचित्र ॥
 मैं वर्णन कीन्ह्यो कछुक, सुनतहि करणपवित्र ॥ १० ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलिपुगखंडे उत्तराखंडे एकोनवतितमो

ऽध्यायः ॥ ८९ ॥

अथ अनुकरणकी लीला ॥

दोहा—अब लीला अनुकरणकी, लीला करों बखान ॥

नीलाचल जो धाम तहँ, शुभशीला तेहि थान ॥ १ ॥
 एक समय तहँके सब लोगा । किय नृसिंहलीला विन शोगा ॥
 तहँ लीला अनुकरणाहि काहीं । कियो नृसिंहरूप मुखमार्हीं ॥
 हिरण्यकशिपु कोहु काहँ बनायो । तेहिबध करन समय जब आयो
 तब लीला अनुकरण स्वरूपा । भो नृसिंह आवेश अनूपा ॥
 हिरण्यकशिपु जेहि काहँ बनायो । ताहि तुरत ते मारि गिरायो ॥
 तब कोउ कह इरपाते मान्यो । कोउ अवेसते वचन उचाच्यो ॥
 आपुसमें यह विग्रह माच्यो । जुरि बहु संत कियो यह सांच्यो ॥
 तुम नहिं करो अवशि कछु रारी । अर्चनमें हम आति सुखकारी ॥
 शुभग रामलीला अनुसरिहैं । तब याहीको दशरथ करिहैं ॥
 जो वन समय काय यह त्यागी । तो याको वध करब न लागी ॥

नाह इरपाते लेहैं जानी । यहिको वध यह किय रिस सानी ॥
तब सब कोउ यह कियो प्रमाना । जब लीलाको कियो विधाना ॥

दोहा—तब लीला अनुकरणको, किय दशरथ निर्माण ॥

राम गवन वन समय में, त्यागिदियो तिन प्राण ॥ २ ॥

दशरथकी गतिको लह्यो, कियो संत जय शोर ॥

तिनके चरित अथोरहैं, भैं वरण्यों इत थोर ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे

नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

अथ रतिवंती बाईकी कथा ॥

छंद—यक रही रतिवंती सुबाई करी बाल उपासना ॥

हरिकी कथामें बड़ी रुचि जेहिं आश और न वासना ॥

यक दिवश छाकी प्रेम यदुपति कछु दुखी तनुते रही ॥

निज पुत्रको सुनिवेकथाहित पढैदीनीसुखचही ॥ १ ॥

जब पुत्र सुनिकै कथा आयो तब मुदित पूछत भई ॥

कहु आज कैसी कथा भै उत सो सुनावै मुदमई ॥

तब कह्यो ताको तनय यशुदा कृष्ण बांधी दामहै ॥

यह कथा अनुपम भई सुनि कहतभै तेहि ठामहै ॥

सुकुमार छोटो बाल मेरे लालको लै जेमरी ॥

तेहि मातु बांधी भाषिमुख असत्यागितनुदियतेहिं घरी

निज प्रेम सत्य देखाय दिय बाई सुरतिवंती तहां ॥

तेहि चारु चरित अपारमति अनुरूपमें इत कछु कहां ३

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेएकनवतितमो

ऽध्यायः ॥ ९१ ॥

अथ जसूस्वामीकी कथा ॥

दोहा—जसूस्वामिवर भक्तको, कहौं शुभग इतिहास ॥

करै साधुसेवा रहै, अंतरवेद निवास ॥ १ ॥

जपै निरंतर हरिको नामा । जाय न अनत त्यागि निजठामा
संतन सेवन हेतु कृपाला । खेती करवावै सब काला ॥
एक दिवश कोउ चोर सिधाई । बँधे बैल लैगये चोराई ॥
जसूस्वामि जब उठे प्रभाता । बैलन बँधे लखे सुखदाता ॥
खेता हित लैगये ठिलाई । भेद न जान्यो गये चोराई ॥
बोई चोर कछुक दिनमार्ही । आय बैल लखि किय भ्रमकार्ही ॥
इनके हम लैगये निकेता । ये इत आये कौने नेता ॥
लौटिगये ते अपने धामा । बैलन दिख्यो तहां अभिरामा ॥
यही भांति द्वै चारक बारा । आये औ निज गये अगारा ॥
स्वामीको प्रभाव लिय जानी । बैल लाय सब हाल बखानी ॥
शिष्य भये हिय चोरा त्यागी । संतनकी सेवामें लागी ॥
जसूस्वामिकी कृपा प्रतापा । मुक्त भये ह्वेके निःपापा ॥

दोहा—जसूस्वामिको जानबो, चारु चरित्र अपार ॥

मैं समास वर्णन कियो, संतन परम आधार ॥ २ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यंकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे दिनवति

तमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

अथ अल्हभक्तकी कथा ॥

दोहा—अल्हभक्तकी अब कहौं, कथा भक्त सुखधाम ॥

एक समय रामतहितै, कीन्ह्यो कहूं पयान ॥ १ ॥

तोहि मगते कोउ संत सिधारी । बरजतभो यह वचन उचारी ॥
आप न जाहिं देश यहि मार्ही । दुष्ट लोग लखि संतन कार्ही ॥

तिलक बिंदुको मानि निशाना । गूरा हनत गुलेल महाना ॥
 बहु संतनके गे दग फूटी । ऐसे विमुख लेहि मग लूटी ॥
 सुनत अहजी कह यह देशा । चलि अवश्य करिहैं शुचि वेशा ॥
 ऐसो कहि यक शहर मैझारी । बाहेर रहै वाग नृप भारी ॥
 तहैं लीन्हें बहु संतसमाजा । उतरतभे लहि मोद दराजा ॥
 ज्येष्ठ मास इक आंब वृक्ष तर । थापित कियो मूर्ति मुरलीधर ॥
 करि मज्जन हरि पूजि सरागा । हित नैवेद्य पके फल मांगा ॥
 तब माली अस वचन बखाना । वृक्ष तरे तो हैं भगवाना ॥
 जो चाहिहैं आपहि लैलेहैं । तुव मुखसों फल नार्हि मँगैहैं ॥
 सुनत अहजी ताके वयना । कियो निवेदन तरु फल चैना ॥

दोहा—तब तुरंत तेहि वृक्षकी, झुकिझुकि कै सब डार ॥

फलन सहित हरिके उपर, शोभितभई अपार ॥ २ ॥

लखि माली गुणि आचरज, भूपति ढिग द्रुत जाय ॥

कह हवाल नृप आय सो, चरणन परचो सचाय ॥ ३ ॥

युत समाज है शिष्यनृप, तिन्हें राखि निज देश ॥

संतनकी सेवा करन, लागेउ वेस हमेश ॥ ४ ॥

ऐसे चरित अनेक हैं, संत अल्हके ख्यात ॥

मैं वरण्यों संक्षेपते, सुनत करै अघ घात ॥ ५ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धे त्रिनवतित-

मोऽध्यायः ॥ १३ ॥

अथ हरिभक्त ब्राह्मणकी कथा ॥

दोहा—यक ब्राह्मण हरिभक्तकी, नाम जासु हरि भक्त ॥

हरि अनुरक्त कहौ कथा, तासु मुक्ति प्रद जक्त ॥ १ ॥

बीते बहु दिन भयो विवाहा । गवन लेनहितकियोउछाहा ॥

बहुरचो जब ससुरारिहि तेरे । तेहि मग महुँ ठग मिले वनेरे ॥
 पूछत भये चोर तेहि काहीं । तुम को तिय लीन्हे सँग माहीं ॥
 कहँ जैहौ निज कहहु हवाला । द्विज हवाला सब कह्यो उताला ॥
 तिनसों जब पूछत भो विप्रा । तबते चोर कह्यो अत छिप्रा ॥
 जहां जात तुम अहौ सुजाना । तहैं अहै ममहुँ को जाना ॥
 तब ब्राह्मण यह वचन उचारा । भल सँग भयो हमार तुम्हारा ॥
 चले चलैंगे तुम्हरे साथ । अस कह तिय युत सो द्विजनाथा ॥
 ठगन संगमें कियो पयाना । जब मग परचो अरण्य महाना ॥
 तब चोरन पहारकी राहा । द्विजहिं बतायो सहित उछाहा ॥
 कह्यो विप्र यह मगन जनाई । यही राह पुनि चोर सुनाई ॥
 जो हम पंथ अन्यथा कहहीं । तुम हम बीच राखतौ अहहीं ॥

दोहा—चलो यही मग चोर कह, चलि द्विज तबहुँ सकै न ॥

तिय बोली यह राम विच, तहां शंक कछु हैन ॥२॥
 जहँ थे कहत अहैं मग ताहीं । निर्भय चलहु कछु भय नाहीं ॥
 चल्यो विप्र भाषे अस नारी । जब आये वन विकट बैझारी ॥
 तब चोरन द्विजको शिर काटी । आगे चलि तियसों कह डाटी ॥
 रोवत चलत भई तब नारी । तेहि पीछे ठग चले सुखारी ॥
 चलि कछु दूरि नारि द्विजकेरी । पीछे बार बार जब हेरी ॥
 तब चोरन यह वचन उचारा । केहि हेरौ तुव पति हम मारा ॥
 कही नारि ताकहँ मैं ताकों । दीन्ह्यो अहै बीच तुम जाकों ॥
 का बाहूको तुम हति डारा । वह सब थल अस सुन्यौ हमारा ॥
 असि वाणी जब नारि पुकारि । तब ह्वै प्रगट राम धनुवारी ॥
 ताहि शोकसागरते तारी । हति दुष्टनको लियो उवारी ॥
 तेहि पतिको दिय तुरत जियाई । प्रमुदित भयो नारि निज पाई ॥
 तामें एक छप्पय नाभाकृत । लिखेदेतहों अति सुख लहि इत ॥

छप्पय—बीच दिये रघुनाथ भक्त सँग ठगिया लागे ।
 निर्जन वनमें जाय दुष्ट किय कर्म अभागे ॥
 बीच दियो सो कहां राम कहि नारि पुकारी ।
 आये सारंगपाणि शोकसागर ते तारी ॥
 दुष्टन किय निर्जीव सब दास प्राण संज्ञा धरी ।
 और युगनते कमलनयन कलियुग अधिक कृपा करी ॥ १ ॥
 दोहा—यहि प्रकार कलिकालमें, निज भक्तन पर राम ॥
 दुष्टनको संहारि करि, कृपा करी अभिराम ॥ ३ ॥
 द्विज नारीको दरश दै, जात भये निजधाम ॥
 कथा अमित हरिभक्तके, मैं कछु कह्यो ललाम ॥४॥
 इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेचतुर्नव
 तितमोध्यायः ॥ ९४ ॥

अथ एक नृपतिकी कथा ॥

दोहा—एक नृपति गाथा कहौं, सुनत दानि सुख गाथ ॥
 जासु कथा श्रवणन किये, होति प्रीति रघुनाथ ॥१॥
 आवत तिलक माल जो धारै । ताको नयननि माहँ निहारै ॥
 हरि औ गुरुको मानि समाना । पूजन करै रोज मतिमाना ॥
 किये अभक्तन माहँ अप्रीती । निर्भय सदा मानि यम भीती ॥
 ऐसो परम भागवत भूषा । ताके ढिग धरि भक्तन रूपा ॥
 भांड लोग आये बहुतेरे । किये लोभ अति द्रव्य घनेरे ॥
 तिन्हें देखि भूपति सुख धारी । लै चरणामृत चरण पखारी ॥
 धूप दीप करि प्रथम सुजाना । दै निवेद पूछ्यो सविधाना ॥
 भांड सभा मधि ते नृप आगे । तारी दै दै नाचन लागे ॥
 पुनि भोजन बहुभांति कराई । सतकारयो अति नगरटिकाई ॥

संतवेष इमि लहि सतकारा । भांड वेषको करि धिक्कारा ॥
विदाहोन जब नृप छिग आये । तब बहु धन दै भूप सुहाये ॥
बोले वचन भांडते भूरी । यह सब द्रव्य कीजिये दूरी ॥

दोहा—यामें अति दुर्गंधिहै, ग्रहण करन नहिं योग ॥

कहि नृप दरशन परशको, लहि प्रभाव तजि सोग ॥ २ ॥

भांड वेष तजिकै भये, भक्त राज विख्यात ॥

कह्यो कथा यह भूपकी, संक्षेपहि अवदात ॥ ३ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडे उत्तरार्द्धे पंचनवतितमोऽध्यायः ९५

अथ अंतर्निष्ठभूपकी कथा ॥

दोहा—भूपति अंतर्निष्ठ इक, रहै भक्त अभिराम ॥

बाहेर ओठनके कबहुँ, लेय नहीं हरिनाम ॥ १ ॥

उर अंतर हरिनाम निरंतर । जपैं न कोउ जानै बाहिर नर ॥
रानी तासु जपै हरिनामा । करै साधु सेवा वसु यामा ॥
सोचति रहै सदा मनमाहीं । मम पति कृष्ण भक्त भो नाहीं ॥
भगवत नाम लेत नहिं आनन । सुन्यो न मैं कबहुँ निज कानन ॥
जागत रहै एक दिन राती । सोवत रह्यो भूप सुख माती ॥
नाम विहारीलाल उचारा । सोवत ही में तौन भुआरा ॥
नृप मुख ते निकस्यो हरि नामा । सुनि रानी अति भै सुखधामा ॥
उठि भोरहि तोपन दगवायो । दीननको बहु द्रव्य लुटायो ॥
बजवायो नौबतिहु निसाना । यह उत्सव लखि अति हरषाना ॥
पूछत भयो रानि सों भूपा । यह उत्सव कस कियो अनूपा ॥
रानी तब यह वचन सुनाई । जबते नाथ व्याहि मैं आई ॥
तबते आजु आपके मुखते । सुन्यो नाम मैं निज श्रुति सुखते ॥

दाहा—तब राजा यह कहत भो, जो हरिनाम सुभाय ॥

राख्यो अंतर यतनमें, आजु गयो कढ़ि आय ॥ २ ॥

अस कहि दियो शरीर तजि, भूपति हरि मन लाय ।

लखि रानी असि नृप दशा, दिय यह कवित बनाय ॥ ३ ॥

कवित्त—भाव नरेशको को वरणै कहि ऐसो सनेहको गाथ
बढ़ायो ॥ मीन ज्यों वारिविहोन मरै मणिहीन फणीश न झेल
लगायो । ताहुते वेगि कियो सुनो संत, पिता रघुनंदनके सम
भायो ॥ राम वियोग वै प्राण तज्यो इन नाम वियोगहि प्राण
पठायो ॥ १ ॥

दाहा—अंतर्निष्ठ महीपके, ऐसे चरित अनेक ॥

मैं वरण्यों संक्षेप ते, सुनै संत सविवेक ॥ ४ ॥

इति श्रीरामरसिकावल्यांकलियुगखंडेउत्तरार्द्धेषणवतितमोध्यायः ९६

अथ गुरुभक्तकी कथा ॥

दाहा—संत एक गुरु भक्तकी, कहौं कथा रमणीय ॥

रहैं गुरुके भक्त अति, गुरुको हरिगुणि जीय ॥ १ ॥

सबै संतत मोद महानै । संत जननको कम कछु मानै ॥
गुरु अपने मनमें यह लावैं । याको अब हम अवशि सिखावैं ॥
संतनको हमते बड़ मानै । हमते कम संतन नहि जानै ॥
चेलाको सकोच बड़ मानी । भूलिजाय कहिवो नित जानी ॥
चेलाको लाग्यो कछु कामा । ताको हेतु जान यक ग्रामा ॥
गुरु ते मांगत भयो विदाई । जाहु गुरु बोल्यो हरषाई ॥
कहिवेको परंतु इक वाता । तुमसों रह्यो हमहि अवदाता ॥
हैं आवो तब करब उचारा । सुनि चेला तुरंत पगु धारा ॥
गुरु राति मरिगयो सबेरे । चेला और आय तिन नेरे ॥
दाह करनको सरितट माहीं । जात भये लै द्रुत गुरु काहीं ॥